पढ़ें और सीखें योजना

ऐसे थे राजेन्द्र बाबू

विश्वनाथ सिंह

विभागीय सहयोग
हीरालाल बाछोतिया

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

सितम्बर 1987
भाद्रपद 1909
PD 15T-MB

प्रकाशन सहयोग

मुख्य सम्पादक: प्रभाकर द्विवेदी
सम्पादन सहायक : *मरियम बड़ा*

मुख्य उत्पादन अधिकारी : सी०एन० राव
उत्पादन अधिकारी : डी०साई प्रसाद
उत्पादन सहायक : अरविन्दर सिंह छतवाल

मूल्य : रु० 9.55

प्रकाशन विभाग में श्री ओ०पी० केलकर, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा एडप्रिंट सर्विसेज 11 रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली 110055 द्वारा फोटो कम्पोज होकर विजयलक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स, के-6, मेन बाजार, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है, और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएंगी। हम आशा करते हैं कि 1987 के अंत तक हम हिन्दी में निम्नलिखित विषयों पर 50 पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

क. शिशुओं के लिए पुस्तकें
ख. कथा-साहित्य
ग. जीवनियाँ
घ. देश-विदेश परिचय
ङ. सांस्कृतिक विषय
च. वैज्ञानिक विषय
छ. सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों, वैज्ञानिकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के

प्रारूप पर भाषा, शैली, और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाएगा।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये अपने देश के सभी कोनों में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के लिए श्री विश्वनाथ सिंह ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों, वैज्ञानिकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

परिषद् में यह योजना प्रो. अनिल विद्यालंकार के मार्ग-दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा. रामजन्म शर्मा, डा. सुरेश पाण्डे, डा. हीरालाल बाछोतिया और डा. अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का कार्य हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डा. रामदुलार शुक्ल देख रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि उनसे इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

पी.एल. मल्होत्रा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
जनवरी 1987

अपनी बात

किसी महापुरुष की जीवनी लिखना उस महापुरुष के साथ जीने जैसा ही सुखकर है। यह मेरा सौभाग्य था कि "पढ़ें और सीखें योजना" के अन्तर्गत मुझे डा० राजेन्द्र प्रसाद की जीवनी लिखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जितने दिन मैं डा० राजेन्द्र प्रसाद की जीवनी लिखता रहा सचमुच उन्हीं परिस्थितियों, संघर्षों और आदर्शों में जीवित रहा, जिनमें डा० राजेन्द्र प्रसाद जिये होंगे। मेरे विचार से डा० राजेन्द्र प्रसाद की जीवनी एक आदर्श विद्यार्थी, एक आदर्श गृहस्थ, एक आदर्श सामाजिक कार्यकर्त्ता और एक आदर्श प्रशासक का मिला जुला स्वरूप है। इस स्वरूप के शिक्षाप्रद पक्ष का विस्तार इतना अधिक है कि जीवन के किसी काल-खंड को लें और कहीं से इसका पारायण करें, तो सब कुछ मीठा और अनूठा ही मिलेगा।

हां, इस जीवनी में मैंने उन अंशों को विशेष रूप से रेखांकित किया है जो अंश उनके उस वय-खंड में आते हैं जो वय खंड इस पुस्तक के पाठकों का है। बहुधा जीवनी-लेखकों ने उन प्रसंगों को नजरंदाज किया है जिन प्रसंगों में डा० राजेन्द्र प्रसाद एक सामान्य और सहज बालक के रूप में अपने क्रिया-कलापों को घटित करते हैं। यह सम्भवतः यह सोच कर किया गया होगा कि उनके विशेष व्यक्तित्व में कहीं साधारणत्व का आरोप न हो जाय। किन्तु किसी भी जीवन चरित्र के लिए यह आवश्यक है कि वह पाठक को अपने ही जीवन का एक अंश सा लगे, न अंध तो ऐसा विश्वास जरूर जगे कि यहां तक आदमी पहुंच सकता है। अतः उस जीवन चरित्र में मैंने उन सामान्य बातों पर विशेष बल दिया है जो बातें एक सामान्य व्यक्ति को असाधारण बनाती हैं।

जहां तक भाषा और शैली का संबंध है वह सामान्य पाठक के स्तर की है। भाषा संबंधी कुछ ऐसे तत्व अवश्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है जो उस वय-वर्ग के बालकों को सीखना आवश्यक है।

विषय सामग्री और जीवन के घटना क्रम के ज्ञान का स्रोत मुख्य रूप से डा० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा लिखी गई आत्म कथा है। इसके अतिरिक्त सेठ गोविन्द दास और डा० बाल्मीक चौधरी तथा केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकें जीवन चरित्र की संदर्भ सामग्री के रूप में रही हैं। मैं उन पुस्तकों के लेखकों प्रकाशकों का आभारी हूं। पुस्तक लिखते

समय प्रोफेसर अनिल विद्यालंकार तथा डा० बाछोतिया का अमूल्य परामर्श एवं सहयोग मिला है। उनके प्रति विनम्र भाव से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

आशा है जिन पाठकों के लिए यह जीवन चरित्र लिखा गया है वे इसे एक रुचिकर उपन्यास की तरह पढ़ेंगे, तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद के जीवन से गुंथी हुई जो घटनाएं हैं, उन घटनाओं के माध्यम से स्वयं ही शिक्षा प्राप्त करेंगे। इस जीवन चरित्र से किसी भी पाठक का जीवन किसी भी रूप में परिवर्तित या प्रेरित हुआ तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा।

विश्वनाथ सिंह

कहानी
कहां से चली

यह बहुत पुरानी बात है। उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में एक गांव है, अमोढ़ा। इस गांव में कायस्थों का एक परिवार रहता था। कहते हैं, एक समय ऐसा आया कि यह परिवार बहुत गरीब हो गया, इतना गरीब कि रोजी-रोटी कमाना मुश्किल हो गया। तब फिर क्या करता? यह परिवार गांव छोड़कर पूरब की ओर चल पड़ा। बलिया में रोजी-रोटी का सहारा मिला, तो वहीं बस गया। लेकिन कुछ दिन बलिया में रहने के बाद इस परिवार के कुछ लोग फिर आगे बढ़े और बिहार में सारन जिले के जीरादेई गांव में बस गये।

किसे पता था कि जीरादेई गांव के इस परिवार की सातवीं-आठवीं पीढ़ी में कोई ऐसा बालक जन्म लेगा, जो इस परिवार को अमर कर देगा। न जाने कितने लोग जन्म लेते हैं, जीते हैं, परिवार बनाते हैं, रोजी-रोटी कमाते हैं और इस दुनिया से चले जाते हैं। लेकिन कभी कोई ऐसा भी जन्म लेता है, जो जन्म लेकर मरता नहीं, बल्कि हमेशा के लिए अमर हो जाता है। हर देश और जाति में ऐसे अमर महापुरुषों ने जन्म लिया है। अपने व्यक्तित्व, विचार और कर्म से आगे आने वाली पीढ़ियों को उन्होंने बहुत कुछ दिया है। उनका यह दान इतिहास में सुरक्षित है। वह हमारे लिए एक धरोहर है, एक पूंजी है।

ऐसी ही धरोहर, एक पूंजी, वह बालक भी था, जिसने 3 दिसम्बर, सन् 1884 को जीरादेई के कायस्थ परिवार में जन्म लिया। उसका नाम पड़ा — राजेन्द्र प्रसाद। बाद में यही डॉ० राजेन्द्र प्रसाद स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति हुए।

एक साधारण बालक से लेकर राष्ट्रपति बनने तक की

कहानी भी बड़ी अनोखी है। यह कहानी यह बताती है कि यदि आदमी में लगन है, विश्वास है, मानवता के प्रति प्रेम है, आस्था है, तो वह ऊंचे से ऊंचा पद पा सकता है। आदमी के गुण ही उसे बड़ा बनाते हैं। ये गुण कुछ तो परिवार और संस्कार से मिलते हैं, कुछ आसपास से मिलते हैं और कुछ आदमी की अपनी समझदारी, अनुभव और ज्ञान से मिलते हैं। राजेन्द्र जिस घर में पैदा हुए थे, जिस माटी में खेले थे, जिस समाज में जिये थे, वह कोई और नहीं, यही है, जिसमें हम-आप जैसे करोड़ों आज भी जीते हैं। लेकिन राजेन्द्र कैसे साधारण होते हुए असाधारण बने—इस रहस्य को जानने के लिए कुछ और भी बातों को जानना जरूरी है।

परिवार और पुरखे

माटी एक ही होती है, उसी माटी से एक होशियार कुम्हार घड़ा बनाता है, पकाता है और रंग-सँवार कर लोगों को दे देता है। लोग न जाने कब तक पानी पीते हैं। वह घड़ा न बहता है, न फूटता है। कई-कई वर्षों तक लोगों के घर बना रहता है। लेकिन उसी माटी से दूसरा कुम्हार भी घड़ा बनाता है। न ठीक से पकाता है, न रंगता-चुंगता है, बस, जैसा-तैसा बाज़ार में बेच देता है। लोग उसे घर ले जाते हैं। पानी भरते ही वह जरा से धक्के से फूट जाता है। लोग उसे कूड़े में फेंक देते हैं।

जिस प्रकार घड़े को अच्छा या बुरा बनाने में कुम्हार का हाथ होता है, उसी प्रकार बालक का व्यक्तित्व सँवारने में मां-बाप और परिवार का हाथ होता है। यह राजेन्द्र का सौभाग्य था कि उसके परिवार और पुरखों में बहुत से अच्छे गुण थे। ये गुण बाद में राजेन्द्र के व्यक्तित्व में भी पुष्पित और पल्लवित हुए।

राजेन्द्र के दादा दो भाई थे। बड़े का नाम चौधुरलाल और छोटे का नाम मिश्रीलाल था। मिश्रीलाल के एक पुत्र हुए, जिनका नाम महादेव सहाय था। यही महादेव सहाय राजेन्द्र के पिता थे। कहते हैं, राजेन्द्र के सगे-दादा मिश्रीलाल की मृत्यु बहुत छोटी उमर में हो गई थी, इसलिए राजेन्द्र के पिता को चौधुरलाल जी ने अपने पुत्र की तरह बड़े प्यार से पाला। चौधुरलाल जी के सगे लड़के थे, जगदेव सहाय। लेकिन चौधुरलाल ने जगदेव सहाय और महादेव सहाय में कभी कोई फर्क नहीं समझा।

जगदेव सहाय बड़े थे। उनके केवल एक लड़की हुई, जो बाद में जाती रही। महादेव सहाय की पांच संतानें थीं, तीन लड़कियां और दो लड़के। एक लड़की तो बचपन में ही मर गई, दो की

शादियां हुईं। इनमें से बड़ी, भगवती देवी थोड़े ही दिनों में विधवा हो गई। दूसरी भी बिना संतान के मर गई। इसके बाद महेन्द्र प्रसाद थे – राजेन्द्र प्रसाद के बड़े भाई। फिर सब से छोटे, राजेन्द्र प्रसाद। यह एक मिलाजुला परिवार था। सब को सब से लगाव था। सब एक-दूसरे के दुख-दर्द का ख्याल रखते थे। चौधुरलाल एक चतुर माली की तरह इस परिवार की बगिया को अपनत्व और प्रेम से सींचते थे।

चौधुरलाल जी को अपने परिवार से जितना अपनत्व और प्रेम था, उससे ज्यादा उनमें अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा थी। वह बिहार के हथुआ राज्य के दीवान थे। इस पद पर वे 25-30 साल तक रहे। अपनी योग्यता, कर्मठता और ईमानदारी के कारण वह महाराज छत्रसाही के हमेशा विश्वासपात्र रहे। कहते हैं, किसी कारणवश महाराज छत्रसाही ने अपना उत्तराधिकार अपने लड़के को न देकर पोते राजेन्द्र प्रताप साही को दिया। चौधुरलाल पर उन्हें विश्वास तो था ही। मरते समय उन्होंने छोटे से पोते की रक्षा का भार चौधुरलाल पर डाल दिया। महाराज की मृत्यु के बाद छोटे कुमार पर बड़ी आफतें आईं। चौधुरलाल जी ने अपनी जान की परवाह न करके उस कुमार की रक्षा की। वह उसकी चारपाई के पास ही सोते थे। उसे जो भी खाना दिया जाता था, पहले स्वयं चख लेते थे – यह सोचकर कि कहीं ज़हर न मिला हो। उन्हें अपना कर्त्तव्य और अपना उत्तरदायित्व प्राणों से भी अधिक प्यारा था।

राजेन्द्र के पिता महादेव सहाय घर पर ही रहा करते थे। उन्हें बाग लगाने का शौक था। वह फारसी के अच्छे विद्वान थे। कुछ-कुछ संस्कृत भी जानते थे। आयुर्वेद में उनकी गहरी रुचि थी। इसका अध्ययन करके वह एक अच्छे वैद्य बन गये थे। उनके पास दूर-दूर से रोगी आया करते थे। जो दवा खरीद सकते थे, उन्हें वह नुस्खे लिखकर दे देते थे। जो गरीब होते और दवा न खरीद पाते, उन्हें अपने पास से दवा दे देते थे। वह कभी किसी की

नाड़ी नहीं देखते थे, न किसी रोगी को देखने उसके घर जाते थे। बस, हालत सुनकर दवा दे-देते थे। इससे उनका बहुत यश फैला था।

महादेव सहाय का शरीर भी बड़ा हृष्ट-पुष्ट था। वह कसरत करते थे, मुगदर भी भांजते थे। घोड़े की सवारी उन्हें बहुत पसन्द थी। उन्होंने राजेन्द्र को भी बचपन में घोड़े पर चढ़ना और मुगदर भांजना सिखाया था।

राजेन्द्र की दादी और मां धार्मिक स्वभाव की थीं। वे राजेन्द्र को बहुत प्यार करती थीं। राजेन्द्र को जल्दी सो जाने की आदत थी। अक्सर वह बिना खाना खाये सो जाते थे। फिर जगाकर उन्हें खाना खिलाने की कोशिश की जाती थी। कभी-कभी तो वह बैठे-बैठे सोते रहते। बड़ी मुश्किल से मुंह खुलवाकर कौर डाला जाता। मां तोता-मैना के किस्से सुनातीं। फिर भी जब वह खाना नहीं खाते तो काकी को बुलाया जाता। घर में एक बूढ़ी दाई थी, जिसे सब लोग काकी कहते थे। वह किसी न किसी उपाय से इनका मुंह खुलवा लेती और खाना खिला देती।

राजेन्द्र जिस तरह जल्दी सोते थे, उसी तरह जल्दी जग भी जाते थे। वह जगकर अपनी मां को भी जगा देते। मां कभी प्रभाती के भजन गातीं, कभी रामायण और महाभारत की कहानियां सुनातीं। राजेन्द्र प्रसाद मां के साथ भजन गाते रहते, कहानियां सुनते रहते।

इस प्रकार राजेन्द्र के बचपन ने जिस परिवार की बगिया में अपनी आंखें खोलीं, वह बगिया कई प्रकार के गुणों से महक रही थी। उसमें दादा का अपनत्व था, परिवार के सभी सदस्यों में एक-दूसरे से प्रेम था, पिता में समाज के प्रति सेवा भाव था, साथ ही शरीर और अच्छे स्वास्थ्य के लिए लगाव था। माता और दादी में धार्मिक भावना थी। और इन सबसे ऊपर दादा की ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा और वफादारी थी, जिसने परिवार को प्रतिष्ठा की ऊँचाई तक पहुंचाया था। परिवार के इन गुणों का

असर राजेन्द्र के नन्हें दिल पर भला कैसे न पड़ता। वह पड़ा, और आगे चलकर उनके व्यक्तित्व में फला-फूला भी।

बचपन की चंचलता और हंसी-खुशी

राजेन्द्र की उमर पांच-छः साल की थी, तब उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। उस समय फारसी का चलन था। राजेन्द्र को पढ़ाने के लिए मौलवी साहब आए। बिस्मिल्लाह के साथ अक्षरारम्भ हुआ। शीरनी बांटी गई और मौलवी साहब को रुपये दिए गये।

मौलवी साहब से पढ़ने के लिए राजेन्द्र अकेले नहीं थे, उनके साथ दो चचेरे भाई और थे। ये दोनों राजेन्द्र से बड़े थे। एक थे जमुना प्रसाद, जो उमर में सबसे बड़े थे। वह खेल और चुहलबाजी में भी सबसे आगे थे। दूसरे गंगा भाई थे। इन तीन विद्यार्थियों के अलावा मौलवी साहब के दो लड़के भी थे, जो इन्हीं के साथ पढ़ते थे।

बचपन में कुछ न कुछ चंचलता तो सब में होती है। हंसना-खेलना, खाना-पीना और उमंग, यही तो बचपन का धन है। राजेन्द्र स्वभाव से बहुत चंचल तो नहीं थे, न किसी से अधिक हास-परिहास ही करते थे। पर इस उमर में पढ़ते समय उन्हें जिन लोगों का साथ मिला, उनसे उनका खूब मनोरंजन हुआ। उस समय मनोरंजन के सबसे बड़े साधन वही मौलवी साहब थे, जो राजेन्द्र को पढ़ाने आते थे। मनोरंजन में घर के बडे लोग भी कभी-कभी शामिल हो जाते थे। जमुना प्रसाद के एक चाचा थे। बलदेव प्रसाद। बलदेव प्रसाद मौलवी साहब को खूब छकाते थे। राजेन्द्र के मन में उस समय कौतूहल और भय दोनों ही रहता था। हंसने का मौका आता, तो बड़ों के सामने हंसना भी मुश्किल हो जाता था।

मौलवी साहब की एक आदत थी कि वह दुनिया की बहुत सी बातों को जानने का दावा करते थे। बलदेव चाचा उनको

तरह-तरह से उकसाते और वह उसी में फंस जाते थे। एक दिन बलदेव चाचा ने कहा कि बाग में बन्दर आ गये हैं। वे गुलैल से मारकर भगाये जा सकते हैं।

यह बात सुनते ही मौलवी साहब बोल पड़े—*अरे, यह कौन सी बड़ी बात है, गुलैल चलाना तो मैं खूब जानता हूं*। बलदेव चाचा जानते थे कि मौलवी साहब कुछ नहीं जानते। वह मौलवी साहब को लेकर बगीचे में गये। गुलैल और गोली मौलवी साहब के हाथ में थमा दी और कहा—*निशाना लगाइए और खूब खींचकर बन्दर को मारिए*। मौलवी साहब ने खूब खींचकर गोली छोड़ी। गोली बंदर को तो नहीं लगी, हां, उनका अपना अंगूठा ज़रूर घायल हो गया। टप-टप खून टपकने लगा और मौलवी साहब दर्द से कराह कर नीचे बैठ गए।

दूसरे दिन सब लोग टहलने निकले। उस दिन दादा चौधुरलाल भी साथ में थे। तब तक मौलवी साहब की बातें दादा के पास भी पहुंच चुकी थीं और उस दिन वह भी मज़ाक में शामिल थे। सभी लोग बातें करते जा रहे थे। सामने से एक सांड आ रहा था।

किसी ने कहा—*यह सांड मारता है। कोई इसके सामने नहीं जा सकता*।

बलदेव चाचा बोले—*ऐसी बात तो नहीं है, अपने मौलवी साहब उस सांड के सामने जा सकते हैं*।

मौलवी साहब सचमुच ताव में आ गये। वह बोले—*मैंने ऐसे बहुत सांड देखे हैं, मुझे बिल्कुल डर नहीं लगता, सांड की जगह चाहे बाघ आ जाये*।

मौलवी साहब आगे बढ़े और सांड ने उन्हें दे पटका। मौलवी साहब धूल झाड़ते हुए वापस आये। दूसरा कोई होता तो फिर आगे से बढ़-बढ़कर बातें मारना छोड़ देता, लेकिन मौलवी साहब तो अपनी आदत से मजबूर थे। उधर बलदेव चाचा भी मौलवी साहब को सिखाने पर तुले हुए थे।

एक दिन फिर बैठे-बैठे बलदेव चाचा बोले—*मौलवी साहब, आइए, आपको बन्दूक चलाना सिखा दें।*

मौलवी साहब बोले— *मैंने हर तरह की बन्दूक चलाई है, बहुत अच्छा निशाना लगाता हूं।*

तो आओ चलें, आज यही हो जाये। बलदेव चाचा उठ खड़े हुए। सभी लड़के, बलदेव चाचा और मौलवी साहब बन्दूक लेकर बाहर गये। एक ऊंचे पेड़ पर गीध बैठा हुआ था। बलदेव चाचा ने कहा —*हां, मौलवी साहब, इस गीध पर निशाना लगाइए।*

गीध पेड़ की चोटी पर बैठा हुआ था। बन्दूक खड़ी करके ही उस पर निशाना लगाया जा सकता था। मौलवी साहब को बलदेव चाचा ने जो बन्दूक दी थी, वह पुराने किस्म की थी। उसमें ऊपर से बारूद भरी जाती थी और वह भारी भी थी। मौलवी साहब ने शायद पहले कभी बन्दूक चलाई नहीं थी। उन्होंने खड़ी बन्दूक अपने सीने पर रखकर निशाना लगाया। उधर बन्दूक का घोड़ा दबा, धमाके के साथ बन्दूक छूटी और इधर गीध के बदले मौलवी साहब चित्त हो गये। बलदेव चाचा ने झटपट मौलवी साहब को उठाया और उन्हें किसी तरह से घर लाये।

बचपन का यह हास-परिहास राजेन्द्र के मन में एक बात बिठा गया। वह बात यह थी कि आदमी को कभी झूठा घमंड नहीं करना चाहिए। चाहे वह ज्ञान का घमंड हो, चाहे बल का, घमंड आदमी को हमेशा नीचे गिराता है।

शिक्षा चलती रही

यह हास-परिहास अपनी जगह चलता रहा, शिक्षा अपनी जगह चलती रही। इन मौलवी साहब ने छै महीने तक पढ़ाया। अब तक राजेन्द्र ने फारसी के अक्षर सीख लिए थे। वह *करीमा* पढ़ने लगे थे। छै महीने बाद दूसरे मौलवी साहब बुलाये गये। वह बहुत गम्भीर थे, अच्छा पढ़ाते भी थे। इन्होंने दो साल तक पढ़ाया। राजेन्द्र बाबू ने *करीमा, मामकीमा, खालकबारी, खुशहाल सीमिया, दस्तूरू लसीमिया, गुलिस्तां, बोस्तां* आदि पढ़ा। इसी बीच उन्होंने कैथी लिखना और गिनती करना भी सीख लिया।

राजेन्द्र के पढ़ने का तरीका यह था कि वह खूब सबेरे उठकर मकतब में चले जाते। मकतब उनके पक्के मकान से अलग एक दूसरे मकान के दालान में था। यहीं एक कोठरी थी, जिसमें मौलवी साहब रहते थे। मौलवी साहब कभी अपनी चारपाई पर और कभी तख्तपोश पर बैठकर पढ़ाया करते थे।

मौलवी साहब सब से पहले पिछले दिन का पढ़ा हुआ पाठ पक्का कराते थे। ज़ो जितनी जल्दी पाठ याद करके सुना देता, उसे उतनी ही जल्दी नया पाठ दिया जाता था। राजेन्द्र सब से पहले अपना पिछला पाठ याद करके सुना देते थे और सब से पहले नया पाठ पढ़ लेते थे।

सूरज निकलने के बाद कुछ देर नाश्ते के लिए छुट्टी मिलती, फिर पाठ याद करना पड़ता। पाठ सुनाने के बाद मौलवी साहब हुक्म देते— किताब बन्द करो, अब तख्ती निकालो। इस बीच कुछ समय खेलने-कूदने के लिए भी मिल जाता था। कभी-कभी घर जाकर कुछ और खा-पीकर आ जाते थे।

दोपहर को नहाने-खाने के लिए एक घंटे की छुट्टी मिलती। खाने के बाद मकतब के तख्तपोश पर सोना पड़ता। राजेन्द्र को दिन में नींद नहीं आती थी। वह तख्तपोश पर लेटे-लेटे शतरंज खेलते। मौलवी साहब चारपाई पर सोते रहते। जब मौलवी साहब के जगने का समय होता, तो वे पहले ही गोटियां उठाकर रख देते। दोपहर बाद दूसरा सबक मिलता। उसे याद करने के बाद खेलने की छुट्टी मिल जाती। इस समय राजेन्द्र गेंद, चिक्का आदि खेला करते थे।

शाम को फिर चिराग जलते ही पढ़ने के लिए बैठना होता। उस समय दिन के दोनों सबक याद करके सुनाने पड़ते और तब मौलवी साहब हुक्म देते – किताब बन्द करो। राजेन्द्र मौलवी साहब को आदाब करते और घर जाकर सो जाते।

शाम की पढ़ाई में राजेन्द्र को हमेशा डर लगा रहता कि कहीं उन्हें नींद न आ जाये। नींद आई, तो मौलवी साहब मार बैठेंगे —यह सोचकर वह होशियार रहते, लेकिन साथ ही छुट्टी पाने के उपाय भी सोचते रहते। ये सारे उपाय अधिकतर जमुना भाई ही सोचते और करते थे। कभी-कभी जब दीये में तेल ज्यादा होता तो जमुना भाई एक पोटली में राख या धूल बांध लाते। चिराग की बत्ती उकसाने के बहाने वह पोटली दीये में रख देते। पोटली दीये का तेल सोख लेती और दीया बुझने को आ जाता। मौलवी साहब दाई पर गुस्सा होते कि वह दीये में क्यों तेल कम लाई? और किताब बन्द करने का हुक्म देते। किसी-किसी दिन जमुना भाई पेशाब करने की छुट्टी मांग कर बाहर जाते। पेशाब करने के बदले कभी वह राजेन्द्र बाबू की मां और कभी अपनी मां से कह आते कि नींद आ रही है। उनके लौटने के थोड़ी देर बाद दाई पहुंच जाती और मौलवी साहब से कहती कि बच्चों को छुट्टी दे दीजिए। मौलवी साहब छुट्टी दे देते।

राजेन्द्र इन शरारतों को देखते-सुनते ज़रूर थे, कभी-कभी इनमें शामिल भी होते, लेकिन कभी उन्होंने ऐसा कोई काम नहीं

किया, जिससे बड़ों का अपमान हो या उनके दिल में चोट पहुंचे। बल्कि, इन मौलवी साहब का वह बहुत आदर करते थे। मौलवी साहब भी उन्हें प्यार करते थे।

हां, जिस तरह छोटे बच्चे मचलते हैं, उनमें नई चीज़ों के लिए कौतूहल होता है, कभी किसी चीज़ के लिए जिद कर बैठते हैं, यह सब राजेन्द्र भी करते थे। उनके गांव में कभी-कभी सौदा बेचने वाले आते थे। राजेन्द्र के लिए ये आकर्षण और कौतूहल के विषय थे। मौलवी साहब के पास एक आदमी गठरी में बांध कर फारसी की कुछ किताबें लाता था। उसके पास बोतलों में स्याही भी रहती थी। राजेन्द्र अपने साथियों सहित हमेशा उसे घेरकर खड़े हो जाते थे।

कभी जाड़े के दिनों में नारंगी-नींबू बेचने वाला आता था। उसे देखकर राजेन्द्र इतना खुश होते, जैसे कोई अनमोल चीज़ मिल गई हो। एक बार जब यही नारंगी वाला आया तो राजेन्द्र दौड़कर मां को बताने गये—मां-मां नारंगी वाला आया है। मां ने कहा—अच्छा चल, ले देती हूं। राजेन्द्र फिर बाहर की ओर भागे और किसी चीज़ से ठोकर खाकर गिर पड़े। ओंठ फट गया और उससे खून भी बहने लगा। एक बार फिर इसी तरह किसी चीज़ के लिए भागे थे, और फिर गिरे थे। तब उनकी आंख के नीचे चोट आई थी। वह निशान तो हमेशा उनकी दाहिनी आंख के नीचे गाल पर बना रहा।

यह भी शिक्षा ही थी

राजेन्द्र के बचपन की शिक्षा और मनोरंजन का एक और भी साधन था—गांव की रामलीला। यह रामलीला हमेशा क्वांर के महीने में होती थी। लीला करने वालों का दल कहीं बाहर से आता था। पन्द्रह-बीस दिनों तक इसकी वजह से गांव में बड़ी चहल-पहल रहती थी।

उस समय की वह लीला भी बड़ी अनोखी थी। जो राम-लक्ष्मण बनते थे, वे अक्सर पढ़े-लिखे नहीं होते थे। एक आदमी तुलसीदास की रामायण अपने हाथ में रखता था और हर पात्र को बताता रहता था। अगर राम से बुलवाना होता, तो वह कहता—*राम जी कहो—हे सीता* फिर यही राम जी दुहराते। लोगों को यह वार्ता बहुत कम सुनाई पड़ती थी, क्योंकि भीड़ बहुत अधिक होती थी। पात्र कितना ही अधिक ऊंची आवाज़ से बोलते, पर सब कुछ शोर-गुल में डूब जाता। हां, जब दौड़-धूप और लड़ाई होती, राम-रावण का दल आमने-सामने आता, तब लोगों का खूब मनोरंजन होता।

रामलीला के दिनों के अलावा भी लोग रामायण का पाठ करते थे। राजेन्द्र बाबू पर इस पाठ का बहुत असर पड़ा था। वे देखते कि लोगों को अक्षर-ज्ञान तो बहुत कम है, पर सभी ढोल-मंजीरे के साथ रामायण गा रहे हैं। न जाने कितने लोगों को रामायण की चौपाइयां और दोहे कंठस्थ थे। वे अपनी बातचीत में भी रामायण की चौपाइयां बोलते रहते थे।

गांव में कुछ त्योहार भी बड़ी उमंग और उत्साह से मनाये जाते थे, जिनका राजेन्द्र बाबू पर असर हुआ। होली, दिवाली और दशहरा तो था ही, मुहर्रम और ईद आदि भी हिन्दू-

मुसलमान मिलकर मनाते थे। राजेन्द्र और दूसरे बच्चे त्योहारों में मौलवी साहब की बनाई *ईदी* अपने बड़ों को पढ़कर सुनाते थे और उनसे रुपये मांगकर मौलवी साहब को देते थे। ईदी में जो कुछ लिखा रहता था, वह भी एक तरह से अनोखा ही था—जैसे दीवाली की ईदी में लिखा होता—*दीवाले आमदे हंगाम जूआ।* दशहरे की ईदी में लिखा जाता—*दशहरे को चले थे रामचन्दर बनाकर रूप जोगी वो कलन्दर।*

उस समय एक और ऐसा व्रत होता था, जिसमें राजेन्द्र शामिल होते थे और उसमें खूब मनोरंजन होता था। वह व्रत था अनन्त चतुर्दशी का। यह भादों की चतुर्दशी को मनाया जाता था। यह दोपहर तक का व्रत था। दोपहर को कथा होती थी और इस कथा के बाद कथा सुनने वालों को एक क्रिया करनी पड़ती थी। वह क्रिया यह थी कि एक बड़े थाल में एक या दो खीरे रख दिए जाते थे। पंडित जी उन पर जल डाल देते। सभी कथा सुनने वाले उस थाल में हाथ डालते। पंडित जी पूछते—क्या ढूंढ़ते हो? लोग जवाब देते—अनन्त फल। पंडित जी फिर पूछते—पाया? उत्तर मिलता—पाया। पंडित जी कहते—सिर चढ़ाओ। सभी लोग जल अपने सिर पर छिड़क लेते। इसके बाद सबको अनन्त दिया जाता। यह अनन्त सूत में चौदह गांठें लगाकर बनाया जाता था। उसे सब लोग अपनी बांह में बांध लेते। राजेन्द्र और दूसरे बच्चों के लिए रंग-बिरंगा और कभी-कभी रेशम का अनन्त पटवे के यहां से आता था।

इस प्रकार सामाजिक वातावरण से भी राजेन्द्र की शिक्षा होती रही। बचपन की इस उमर में उन्हें जो कुछ भी मिला—मौलवी साहब से, अपने सहपाठियों से, गांव वालों से, वहां के रीति-रिवाजों से, वह सब शिक्षा का अंग ही तो था। अगर सिर्फ स्कूली शिक्षा ही को शिक्षा कहें, तो अब तक उन्हें मौलवी साहब से फारसी की शिक्षा मिल चुकी थी।

छपरा की ओर

गांव की शिक्षा समाप्त हुई तो राजेन्द्र को छपरा भेजा गया। उनके बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद पहले ही वहां पढ़ रहे थे। छपरा में डिस्ट्रिक्ट स्कूल के आठवें दर्जे में राजेन्द्र का नाम लिखवाया गया। आज जो पहला दर्जा होता है, उसे उन दिनों आठवां दर्जा कहा जाता था। राजेन्द्र प्रसाद ने उसी दर्जे में नागरी वर्णमाला अ आ इ ई और अंग्रेजी की ए० बी० सी० डी० सीखी। यहां राजेन्द्र ने खूब मन लगाकर पढ़ा। सालाना परीक्षा में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। उस समय डिस्ट्रिक्ट स्कूल के हेड मास्टर क्षीरोद चन्द्र राय चौधरी थे। वह बड़े विद्वान और नामी शिक्षक थे। स्कूल में उनका रोब भी बहुत था।

राजेन्द्र प्रसाद प्रथम स्थान पाने पर बहुत खुश थे। तभी चपरासी ने आकर बताया—तुम्हें हेड मास्टर साहब बुला रहे हैं। हेड मास्टर साहब उन्हीं लड़कों को बुलाते थे, जिनके बारे में कोई शिकायत होती थी। राजेन्द्र प्रसाद डरते-डरते हेड मास्टर के पास गये। हेड मास्टर ने पूछा—तुम्हारे बहुत अच्छे नम्बर हैं, डबल तरक्की लेकर सातवें के बदले छठे क्लास में जाओगे?

राजेन्द्र प्रसाद उस समय कुछ घबड़ा से गये। एक तो भय, दूसरे कौतूहल, तीसरे उन्हें लगा कि एक बरस की अधिक पढ़ाई कैसे लांघ पाऊंगा? उन्होंने उत्तर दिया—भाई से पूछकर बताऊंगा।

हेड मास्टर ने पूछा—कौन भाई है तुम्हारा?

राजेन्द्र प्रसाद ने भाई का नाम बता दिया। हेड मास्टर भाई को जानते थे। उन्होंने कहा—तुम्हारा भाई इस विषय में क्या

मुझसे ज़्यादा जानता है? खैर, जाकर पूछ लो।

राजेन्द्र दौड़ते हुए भाई के पास गये। भाई उनकी डबल तरक्की की बात सुनकर खुश हुए। लेकिन उनका विचार था कि एक क्लास लांघ जाने से राजेन्द्र प्रसाद कमज़ोर पड़ जायेंगे। यही बात भाई ने हेड मास्टर से कही। हेड मास्टर ने हंसकर फिर अपनी पहली बात दुहराई—इस विषय में क्या तुम मुझसे ज़्यादा जानते हो? भाई कुछ नहीं बोले। वह शायद संतुष्ट हो गये थे। हेड मास्टर ने डबल तरक्की देकर राजेन्द्र को दर्जा 6 में कर दिया।

इसी बीच बड़े भाई ने छपरा में इन्ट्रेन्स परीक्षा पास कर ली। वह पढ़ने के लिए पटना जाने लगे, तो राजेन्द्र को भी पटना जाना पड़ा। वहां टी०के० घोष अकैडमी स्कूल में इनका दाखिला हुआ। उस समय वह स्कूल बहुत अच्छा माना जाता था। यहां आकर राजेन्द्र बाबू ने बड़ी मेहनत की। वह अपने को छपरा में मिले डबल प्रोमोशन के योग्य साबित करना चाहते थे। साथ ही वह चाहते थे कि कक्षा में किसी से पीछे न रहें। यहां पढ़ाई के साथ वह खेलों में भी रुचि लेते थे। अपनी लगन, रुचि और मेहनत की बदौलत यहां भी उन्होंने सारी परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

विवाह और धूम-धाम

जब राजेन्द्र छपरा में पढ़ते थे, तभी दादा और दादी का देहावसान हो गया। परिवार की सारी जिम्मेदारी राजेन्द्र के पिता पर आ गई। उन दिनों बाल विवाह का चलन था। छोटी उमर में ही बालक-बालिकाओं का विवाह कर देना मां-बाप अपना कर्त्तव्य समझते थे। महादेव प्रसाद जी ने भी राजेन्द्र प्रसाद की शादी की बात चलाई। शादी पक्की हो गई। इस समय राजेन्द्र की उमर 13 साल की थी और पांचवीं कक्षा में पढ़ते थे।

बलिया जिले में दलन छपरा नाम का गांव है। यहीं राजेन्द्र प्रसाद की शादी तय हुई। जीरादेई से यह गांव लगभग 60 किलोमीटर की दूरी पर है। राजेन्द्र बाबू के ससुर आरा में मुख्तार थे। उन्होंने तिलक में 2000 रु. चढ़ाये थे। बर्तन, कपड़े आदि अलग से थे। उन दिनों को देखने से यह तिलक सम्मान-जनक था। परिवार की प्रतिष्ठा के अनुसार राजेन्द्र का विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ था।

उस समय बारात में हाथी-घोड़े, ऊंट, बैलगाड़ियां आदि—सभी कुछ जाते थे। देहातों में कहीं-कहीं अब भी जाते हैं। राजेन्द्र दूल्हा बन एक पालकी में बैठे। उनके पिता भी दूसरी पालकी में बैठे। बाकी बाराती बैल-गाड़ियों से चले। इस बारात के लिए हाथी-घोड़े तो बहुत मांगे गये थे, लेकिन उस दिन का लगन बहुत *कड़क लगन* था। गांव की भाषा में *कड़क लगन* उस तिथि और मुहूर्त को कहते हैं, जो विवाह के लिए बहुत अच्छी होती है। उस दिन बहुत विवाह होते हैं। इसलिए इस बारात के लिए केवल एक हाथी मिल पाया था। दो-चार घोड़े भी थे।

जेठ का महीना था। कठिन गर्मी के दिन। तेज और गरम

हवा में पालकी का कपड़ा बार-बार उड़ता और गुब्बारे की तरह भर जाता था। चांदी की पालकी वैसे भी भारी थी, ऊपर से लू और धूप, कहार परेशान थे। राजेन्द्र बाबू भी परेशान थे। दो दिन का लम्बा रास्ता था। बड़ी मुश्किल से पहले दिन बारात शाम को सरयू के किनारे पहुंची। यहीं डेरा पड़ा और रात का विश्राम हुआ।

हाथी अड़ गया

सबेरे सरयू पार करनी थी। सामान, पालकी, बैलगाड़ी, घोड़े आदि नावों में लादे गये और पार चले गये। हाथी भला कैसे नाव में लादा जाता। उसे तैरा कर पार कराने के लिए नदी में उतारा गया। वह हाथी भी अड़ियल था। नदी नहीं पार करना चाहता था। वह थोड़ी दूर पानी में जाता, फिर वापस आ जाता। कई नावें लाई गईं। उनके बीच में करके उसे पार कराने की कोशिश की गई, लेकिन सब बेकार। हाथी पार न उतरा। तब यह सोचा गया कि हाथी को यहीं छोड़ दिया जाये और बारात आगे बढ़े।

बारात बिना हाथी के चली, पर इससे राजेन्द्र के पिता को दुख हुआ। परिवार की प्रतिष्ठा के अनुसार जिस बारात में कई हाथी होने चाहिए उसमें एक भी हाथी न हो, तो लोग क्या कहेंगे। उनकी अपनी बारात में पचासों हाथी गये थे। पर अब क्या करते? बारात वापस तो जा नहीं सकती थी। हाथी के झमेले में वैसे ही देर हो गई थी। इसलिए समय पर पहुंचने की हड़बड़ी में बारात तेजी से चली।

इस बीच एक घटना और हो गई। बारात जब गांव से एक-दो मील की दूरी पर थी, तभी सामने से दो-तीन हाथी आते दिखाई दिए। वे किसी दूसरी बारात में गये थे और उनकी रस्म पूरी करके वापस जा रहे थे। *पीलवानों* से बात हुई। उन्हें कुछ रुपये दिए गये और वे बारात में शामिल होने के लिए राज़ी हो गये। इस तरह हाथी का हौसला भी पूरा हो गया, लेकिन बारात पहुंचते-पहुंचते रात के दस-ग्यारह बज गये।

दूल्हा सो गया

एक तो दो दिन का सफर, वह भी पालकी में, दूसरे थकावट, तीसरे सही-शाम सो जाने की आदत, बारात पहुंचने के पहले ही राजेन्द्र प्रसाद आराम से पालकी में सो गये। किसी तरह उन्हें जगाया गया और परिछावन की रस्म पूरी की गई। एक-एक करके सारी रस्में पूरी हुईं और राजेन्द्र का विवाह हो गया।

लेकिन यह विवाह कैसा था? वैसा ही जैसा गुड्डे-गुड़ियों का होता है। राजेन्द्र बाबू ने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> मुझे आज वे रस्में भी पूरी तरह याद नहीं हैं और न यह याद है कि उनमें मेरा क्या हिस्सा रहा। लड़कपन में मेरी बहन गुड़ियों के विवाह का खेल किया करती और उसमें मैं भी शरीक हुआ करता था। यह विवाह मेरे लिए कुछ वैसा ही था। मैंने न तो विवाह के महत्त्व को समझा और न यह महसूस किया कि मेरे ऊपर कोई जिम्मेदारी है। मेरा हाथ न विवाह का निश्चय करने में रहा था, और न इन रस्मों में। जो कुछ पंडित या हज़ाम या अपने घर की या ससुराल की स्त्रियां बताती गईं, वह करता गया और अन्त में लोगों ने समझ लिया कि मेरा विवाह हो गया। मुझे तो इतना भी ज्ञान नहीं हुआ कि क्या हुआ? हां, इतना समझ गया था कि मेरी भौजाई जिस तरह घर में आ गई थीं, उसी तरह एक दिन कोई मेरी बहू भी आ जायेगी।

उस समय एक चलन यह भी था कि कहीं-कहीं विवाह के बाद लड़की को नहीं लाते थे। कुछ दिनों बाद छोटी-मोटी बारात फिर जाती थी। इसे *द्विरागमन* कहा जाता था। राजेन्द्र बाबू की

भी शादी के बाद बहू नहीं आई थी। एक साल के बाद द्विरागमन हुआ, तब बहू आई। द्विरागमन में भी एक बात यह हुई कि बारात देर से पहुंची। दूसरे लड़की वाले जिस शान-शौकत से बारात के आने की आशा करते थे, बारात उस तरह से नहीं थी। इसलिए लड़कीवाले नाराज़ हो गये। लेकिन जब उन्होंने बहू के लिए ले जाये गये गहने और कपड़े देखे तो खुश हो गये।

राजेन्द्र बाबू ने इस सम्बन्ध में एक मज़ेदार बात अपनी आत्मकथा में लिखी है। वे कहते हैं—*मैं समझता हूं कि वर को देखकर भी घर की स्त्रियां और दूसरे आये हुए लोग खुश हुए होंगे, यद्यपि मेरे पास इसका कोई सबूत नहीं है*।

लगता है तेरह-चौदह साल की उस छोटी सी उमर में भी राजेन्द्र प्रसाद यह अच्छी तरह समझते थे कि बड़ी बारात ले जाना, शान-शौकत दिखाना या फिर कपड़े और गहनों से खुश होना—ये सब नासमझी की बातें हैं। खुश तो होना चाहिए अच्छा दूल्हा और अच्छी दुल्हन देख कर, लेकिन जिस दूल्हा और दुल्हन को एक साथ अपनी जिन्दगी बितानी है, शादी में उनका कोई हाथ नहीं होता। शादी लेन-देन और व्यापार तो बन जाती है, झूठी शान-शौकत दिखाने का जरिया भी बन जाती है, लेकिन यह कोई नहीं सोचता कि वह लड़के और लड़की के अच्छे जीवन का आधार भी बने। ये सब सामाजिक विकृतियां थीं, जिन्हें राजेन्द्र जानते-समझते थे।

पर्दा अपनों से

गांव के जीवन में पर्दा-प्रथा तो आज भी है। घर की बहुयें जेठ, ससुर और बड़ों के सामने घूंघट निकाले रहती हैं। हां, पढ़े-लिखे और आधुनिक विचार वाले घरों में अब यह प्रथा नहीं है। लेकिन उस समय राजेन्द्र के घर में पर्दे का चलन था और इसका पालन कड़ाई से किया जाता था। घर की छोटी बहुओं से लेकर बड़ी-बूढ़ी औरतें तक परदे में रहती थीं। उन्हें जब कभी अपने कमरे से बाहर निकलना होता तो हाथ भर का घूंघट लटकाये रहतीं। इस पर्दे के कारण पति-पत्नी को भी आपस में बातचीत कर पाना मुश्किल होता था।

राजेन्द्र तो वैसे ही छोटी उमर के थे। इस पर्दे के कारण बातचीत की कौन कहे, पत्नी को देख भी नहीं पाते थे। अपने भाई और भौजाई को भी उन्होंने यह शील शिष्टाचार निभाते हुए देखा था। अतः वह भी वैसा ही करते थे।

गर्मियों की छुट्टी में राजेन्द्र प्रसाद घर आते। उस समय रात में वह बाहर ही सो जाते। काफी रात गये उनकी मां दाई को भेजतीं। दाई राजेन्द्र को जगाकर ले जाती और उस कमरे में छोड़ देती, जहां उनकी पत्नी रहती। राजेन्द्र की आदत जल्दी सो जाने की थी ही। वह पत्नी के कमरे में जाते ही फिर गहरी नींद में सो जाते। कितनी ही कोशिश होती पर राजेन्द्र की नींद न टूटती। उधर सबेरे मुंह अंधेरे ही भागना पड़ता, ताकि कोई देख न ले कि पत्नी के कमरे में सोये थे। इन मर्यादाओं और परम्पराओं के बीच राजेन्द्र का दाम्पत्य जीवन चला। उन्होंने आगे चलकर अपने इस जीवन के विषय में इस प्रकार लिखा—

आज विवाह हुए प्रायः 40-45 बरस हो गये होंगे, पर शायद ही सब दिनों के गिनने के बाद भी हम दोनों इतने महीने भी एक साथ रहे हों। पढ़ने का समय पटना, छपरा व कलकत्ता में कटा। वकालत के जमाने में भी मैं कलकत्ता में अकेला ही रहा और पटना जाने पर भी दो ही एक बार, घर के लोग थोड़े दिनों के लिए साथ रहे। असहयोग आरम्भ होने के बाद तो घर जाने का समय और भी कम मिला है और घर के लोगों को साथ रखने का न तो सुभीता रहा, न काम की झंझट में फुर्सत ही।

यह सब पढ़ कर ऐसा लगता है कि राजेन्द्र बाबू ने हमेशा परिवार की मर्यादा, विद्याध्ययन और देश के काम को बड़ा माना। उन्होंने अपने व्यक्तिगत सुख पर उतना ध्यान नहीं दिया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि राजेन्द्र बाबू ने जिन पुरानी मान्यताओं का पालन किया था, वे सभी बहुत अच्छी थीं। दूसरा कोई होता तो उन्हें तोड़ भी देता और उसका तोड़ना बुरा भी न कहा जाता। लेकिन राजेन्द्र बाबू समाज से, परम्परा से, परिवार से सामंजस्य करके चलने वाले व्यक्ति थे। उन्हें दूसरों का ख्याल था। बड़ों का लिहाज़ था। अपने सुख के लिए वह उन बातों का विरोध नहीं करना चाहते थे, जो परम्परा से चली आ रही हैं और बड़े-बूढ़े जिन्हें मानते आ रहे हैं। सच तो यह है कि इन सारे गुणों का बीजारोपण राजेन्द्र के चरित्र में उनके बचपन में ही हो गया था।

हथुआ और फिर छपरा स्कूल में

राजेन्द्र पटना में पढ़ रहे थे। स्कूल अच्छा था, पढ़ाई अच्छी थी और उनका नतीजा भी अच्छा था। लेकिन विवाह के बाद उन्हें पटना छोड़ना पड़ा। इसका कारण यह था कि भाई ने पटना में इंटरमीडिएट पास कर लिया था। उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए कलकत्ता जाना था। परिवार के लोगों ने यह तय किया कि भाई कलकत्ता जायें और राजेन्द्र प्रसाद को हथुआ के स्कूल में ही भर्ती कराया जाये।

हथुआ के स्कूल में पहले तो नाम लिखाने में ही दिक्कत हुई। मास्टर ने कहा कि हम लड़के की परीक्षा लेंगे, तब नाम लिखेंगे। खैर, किसी तरह नाम लिखा गया। पर वहां की पढ़ाई का तरीका बड़ा विचित्र था। जो पाठ पढ़ाया जाता, उसे कंठस्थ करके सुनाना पड़ता। खासकर इतिहास की कक्षा में मास्टर कहते— पाठ सुनाओ, और किताब बन्द करके शुरू से आखीर तक जुबानी सुनाना पड़ता। राजेन्द्र प्रसाद की आदत नहीं थी कि बिना समझे-बूझे किसी चीज को रटते रहें। वह 6 महीने तक उस स्कूल में रहे, लेकिन एक दिन भी कोई पाठ अक्षरश: याद करके नहीं सुना सके। उन्होंने बहुत कोशिश की पर सब बेकार।

किसी ने बताया—अगर तुम किसी पाठ को 120 बार दुहरा लो, तो जरूर कंठस्थ हो जायेगा। राजेन्द्र ने यह भी किया। वह कभी-कभी रात में डेढ़-दो बजे उठ जाते और पाठ को दुहराना शुरू कर देते, पर फिर भी पाठ कंठस्थ न हो पाता। उधर मास्टर भी गुस्सा होते और कुढ़कर कहते—यह कक्षा 4 में भर्ती होने की योग्यता नहीं रखता। कभी यह धमकी भी देते कि तुम्हें पिछली

कक्षा में वापस कर दिया जायेगा। इन बातों से राजेन्द्र के स्वाभिमान को बड़ा धक्का लगता। अन्त में वह बहुत बीमार पड़ गये और वार्षिक परीक्षा में बैठ भी नहीं सके।

इन विपरीत परिस्थितियों में राजेन्द्र प्रसाद भला कैसे पढ़ पाते। हथुआ स्कूल से नाम कटाकर उन्हें फिर छपरा के डिस्ट्रिक्ट स्कूल में भर्ती कराया गया। राजेन्द्र तो पहले ही यहां पढ़ चुके थे। यहां आते ही उनकी खोई हुई बुद्धि जैसे फिर से जाग पड़ी। सच तो यह था कि बुद्धि खोई नहीं थी, बल्कि उसे आतंकित करके कुंठित कर दिया गया था। अब फिर अच्छा वातावरण मिला तो फिर बुद्धि खिल उठी।

छपरा स्कूल में चौथे दर्जे में बहुत लड़के थे। इसलिये लड़कों को तीन सेक्शन में बांट दिया गया था। राजेन्द्र सेक्शन 'क' में थे। इस सेक्शन के टीचर श्री रसिक लाल राय थे। यह बड़े अच्छे स्वभाव के थे। पढ़ाते भी बहुत अच्छा थे। वे सभी लड़कों से अच्छा व्यवहार करते थे। प्राय: दूसरे सेक्शन के लड़के भी उनसे पढ़ने के लिए आया करते और वे सबको उसी उत्साह और प्रेम से पढ़ाते थे। उस समय चौथी कक्षा में बहुत से ऐसे लड़के थे, जो मिडिल स्कूल से पास करके आये थे। कुछ इतने होशियार थे कि उन्हें छात्रवृत्ति मिलती थी। ऐसे विद्यार्थियों के रहते हुए भी रसिकलाल राय राजेन्द्र को बहुत मानते थे। वह जानते थे कि यह लड़का लगनशील, अनुशासनप्रिय और प्रतिभावान है।

एक दिन रसिकलाल ने राजेन्द्र को बुलाया और कहा—तुम मेहनत करो, अन्त में तुम्हारा और रामानुग्रह का ही मुकाबला होगा, दूसरे लड़के तेज़ होने पर भी तुमसे पीछे रह जायेंगे। मास्टर रसिकलाल की यह भविष्यवाणी तीन साल बाद सच साबित हुई। चौथी कक्षा में राजेन्द्र बाबू को चौथा स्थान मिला था। तीसरी कक्षा में तीसरा मिला। दूसरी कक्षा में उन्होंने प्रथम स्थान पा लिया। रामानुग्रह को दूसरा स्थान मिला।

आगे
और
आगे

परीक्षाफल मालूम होने के बाद राजेन्द्र प्रसाद छपरा गये। वहां वह सबसे पहले रसिक बाबू से मिले। रसिक बाबू बहुत प्रसन्न थे ऐसे कि जैसे वही प्रथम आये हों। सच्चा शिक्षक विद्यार्थी की उपलब्धि से हमेशा खुश होता है। उसे अपने परिश्रम का फल जो मिलता है। रसिक बाबू ने तुरन्त आम और मिठाई मंगाई। राजेन्द्र प्रसाद को खिलाया। वह बड़ी देर तक राजेन्द्र को समझाते रहे देखो, इस नतीजे से तुम्हारी जिम्मेदारी बढ़ गई है। यह पहला अवसर है कि कोई बिहारी लड़का यूनिवर्सिटी में प्रथम आया है। बंगाल के लड़के इस बात को बरदाश्त नहीं कर सकेंगे। वह परिश्रम करके तुम्हें इंटर की परीक्षा में पराजित करने का प्रयत्न करेंगे। कुछ बुरे लड़के तुम्हें दूसरी प्रकार से गिराने की कोशिश करेंगे। इसलिए कलकत्ता में तुम बड़ी सावधानी और चौकसी से रहना। परिश्रम करके तुमने जो स्थान अबकी पाया है, उसे कायम रखना। कलकत्ता बहुत बड़ा शहर है। उसमें खेल-तमाशे भी बहुत हैं। बुरी चीजें भी बहुत हैं। तुम इन चीज़ों से बचना और जहां तक हो सके, परिश्रम करके अपने स्थान को बनाये रखना।

परिश्रम का फल

उस समय यूनिवर्सिटी की परीक्षा से पहले स्कूल की परीक्षा हुआ करती थी। जो विद्यार्थी स्कूल की परीक्षा में सफल होते, उन्हें ही यूनिवर्सिटी की परीक्षा में बैठने की इज़ाजत मिलती थी। राजेन्द्र प्रसाद स्कूल की परीक्षा में सबसे अधिक अंक लेकर प्रथम स्थान पर आये। उन्होंने यूनिवर्सिटी की भी परीक्षा दी और परीक्षा देकर घर चले आये।

एक दिन संध्या के समय वह टहलने निकले तो किसी ने आकर बताया कि यूनिवर्सिटी का परीक्षाफल गजट में निकल गया है। वे सीवान गये। वहां परीक्षाफल देखा। उससे इतना ही पता चला कि वह प्रथम श्रेणी में पास हुए हैं। लेकिन कुछ दिन बाद ही किसी आदमी ने तार लाकर दिया। इसमें लिखा था कि राजेन्द्र बाबू इन्ट्रेन्स की परीक्षा में यूनिवर्सिटी में प्रथम आये हैं। अब तो घर वालों की खुशी का ठिकाना न रहा। उस समय बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम और बर्मा, वे सभी सूबे कलकत्ता यूनिवर्सिटी के अन्तर्गत आते थे। एक ही परीक्षा होती थी। इस सब सूबों को मिलाकर जो 10 लड़के सबसे ऊपर नम्बर लाते थे, उन्हें 20 रुपये की छात्रवृत्ति मिलती थी। राजेन्द्र बाबू तो सर्वप्रथम थे, इसलिये सबका खुश होना स्वाभाविक था।

कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में

राजेन्द्र आगे की पढ़ाई के लिए पहली बार कलकत्ता गये। वहां की सड़कें, मकान और ट्रामगाड़ी देखकर भौंचक्के रह गये। उन्हें प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लेना था। जब वहां पहुंचे तो पता चला पहले से ही बहुत लड़के आ गये हैं, आगे की भर्ती बन्द हो गई है। उस समय कॉलेज के प्रिन्सिपल डॉ० पी०के० राय थे। राजेन्द्र के भाई ने प्रिन्सिपल से बात की। भला राजेन्द्र प्रसाद जैसे होनहार विद्यार्थी को लेने से कौन इंकार करता। उन्होंने आज्ञा दे दी और राजेन्द्र का दाखिला प्रेसीडेन्सी कॉलेज में हो गया। उस समय हॉस्टल में भी जगह नहीं थी, इसलिए वह अपने भाई के ही हॉस्टल में उन्हीं के साथ रहने लगे।

नाम लिखवाने के बाद राजेन्द्र पहले दिन कक्षा में पहुंचे। पहला घंटा कैमिस्ट्री का था। कैमिस्ट्री के शिक्षक डॉ० पी०सी० राय थे। उन्होंने हाजिरी लेना शुरू किया। कक्षा के सभी लड़कों के नम्बर पुकारे गये। राजेन्द्र सबसे पीछे वाली बेंच पर बैठे थे। जब आखिरी लड़के का भी नम्बर पुकारा जा चुका और डॉ० राय रजिस्टर बन्द करने लगे तो राजेन्द्र खड़े हो गये और बोले—सर, मैं अपना नम्बर नहीं जानता हूं।

डॉ० पी०सी० राय ने आंख उठाकर उनकी ओर देखा और बोले—ठहरो, अभी मैंने मदरसे के लड़कों की हाजिरी नहीं ली है। यह कह कर वह दूसरा रजिस्टर उठाने लगे। उस समय यह प्रथा थी कि मुसलमान लड़के मदरसा के छात्र माने जाते थे। वे

कॉलेज के दूसरे लड़कों की तरह कक्षा में आते थे, वही विषय पढ़ते थे। किसी और बात में भी अलग नहीं थे। पर उन्हें 12 रु० की जगह 4 रुपये फीस देनी पड़ती थी। उनकी हाजिरी का रजिस्टर भी अलग था। राजेन्द्र चिपका हुआ पैजामा और टोपी पहन कर कक्षा में गये थे। वह समझ गये कि पैजामे और टोपी के कारण उन्हें मुसलमान समझा गया। उन्होंने कहा—सर, मैं मदरसे का छात्र नहीं हूं। मैंने इस कॉलेज में आज ही नाम लिखाया है। डॉ० राय ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

उत्तर मिला—राजेन्द्र प्रसाद।

अब तो सभी लड़के पीछे मुड़कर देखने लगे। उनको पता था कि उस साल राजेन्द्र प्रसाद नाम के किसी लड़के ने यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान पाया है। डॉ० राय ने भी उनकी ओर आदर से देखा और पूछा—तुमने इतनी देर से नाम क्यों लिखाया? फिर खुद ही बोले—खैर, कोई बात नहीं, तुम्हारा नाम रजिस्टर में लिख जायेगा, आज की हाजिरी भी लग जायेगी।

राजेन्द्र की कक्षा में ज्यादातर बंगाली लड़के थे। उनमें से कुछ कोट-पतलून और हैट वाले भी थे। ये सब बड़े लोगों के लड़के थे। उनके पिता विलायत से लौटे बैरिस्टर या डॉक्टर थे। राजेन्द्र प्रसाद ने वहां जाने से पहले किसी हिन्दुस्तानी लड़के को कोट-पतलून पहनते नहीं देखा था। इसलिए पहले दिन तो उन्हें यही लगा था कि ये लोग ऐंग्लो इंडियन हैं या क्रिस्तान होंगे। पर जब नाम पुकारा गया, तब पता चला हिन्दू ही हैं।

कक्षा में हिन्दी जानने वाले लड़के बहुत कम थे। हां, कुछ लड़के अवश्य थे, जिनमें एक देवी प्रसाद खेतान थे। वह भी बिहार से ही आये थे। राजेन्द्र की इनसे जल्दी ही दोस्ती हो गई। धीरे-धीरे कुछ बंगाली लड़कों से भी दोस्ती हुई। इनमें से योगेन्द्र नारायण मजूमदार, गिरीश चन्द्र सेन, अविनाश चन्द्र मजूमदार और जे०एम० सेन गुप्त मुख्य थे।

राजेन्द्र मुश्किल से एक हफ्ता कॉलेज में पढ़ पाये थे कि

उन्हें जाड़ा-बुखार शुरू हो गया। इस बुखार ने इतना परेशान किया कि एक बार तो वह बहुत निराश हो गये। उस समय यह नियम था कि कॉलेज में जितने लैक्चर हों, उनमें कुछ निश्चित अनुपात में जरूर हाजिर रहना होता था। अगर कोई हाजिर नहीं हुआ, तो उसे यूनिवर्सिटी की परीक्षा देने की आज्ञा नहीं मिलती थी। राजेन्द्र को लगा कि शायद वे हाजिरी पूरी नहीं कर पायेंगे। पढ़ाई पीछे छूट गई थी, सो अलग। उनके भाई भी चिंतित हुए। वे उन्हें डॉ० नीलरतन सरकार के पास ले गये। उन्होंने दवा दी, ज्वर आना बन्द हुआ।

राजेन्द्र तीन-चार महीने की पढ़ाई में पिछड़ गये थे। लेकिन उन्होंने खूब परिश्रम किया। वह निश्चित करके जुटे कि उन्हें प्रथम तो आना ही है। जो पुस्तक कक्षा में पढ़ाई जाती थी, उसके अलावा भी उन्होंने तीन-चार पुस्तकें पढ़ीं। वे अपने को हिसाब में कमज़ोर समझते थे। उस पर विशेष ध्यान दिया। ऐलजबरा, ट्रिग्नोमेट्री आदि की जितनी पुस्तकें मिलीं, वे सब उन्होंने पढ़ लीं, उनके अभ्यास कर लिए। उस समय तक यूनिवर्सिटी में जितने प्रश्न पूछे गये थे, वे सब हल कर लिए।

कॉलेज की परीक्षा हुई। इसमें राजेन्द्र के हर विषय में सबसे ज़्यादा नम्बर आये। लेकिन यूनिवर्सिटी की परीक्षा में शामिल होने के लिए जिन छात्रों की सूची बनी, उनमें राजेन्द्र प्रसाद का नाम नहीं था। इस सम्बन्ध में एक मज़ेदार घटना हुई।

उस समय कॉलेज में एक नये अंग्रेज प्रिंसिपल आ गये थे। वह स्वयं परीक्षाफल सुनाने के लिये आये। उन्होंने एक-एक करके सबका नाम बताया। उसमें राजेन्द्र प्रसाद का नाम ही नहीं था। सुनकर सभी लड़कों को आश्चर्य हुआ। राजेन्द्र प्रसाद तो घबड़ा ही गये। वह प्रिंसिपल से बोले—*सर, मेरा नाम नहीं पढ़ा गया?*

प्रिंसिपल ने जवाब दिया—*तुम पास नहीं हुए, इसलिए तुम्हारा नाम नहीं पढ़ा गया।*

ऐसा नहीं हो सकता, राजेन्द्र ने उत्तर दिया – *मैं जरूर पास हुआ होऊंगा।*

प्रिंसिपल ने फिर कहा — *अगर पास होते तो नाम ज़रूर रहता।*

राजेन्द्र ने फिर कुछ कहना चाहा तो प्रिंसिपल बिगड़ गया — *चुप रहो नहीं तो जुर्माना करूंगा।*

राजेन्द्र फिर भी चुप नहीं हुए तो उसने कहा —*तुम पर पांच रुपये जुर्माना करता हूं।*

वह फिर बोले, तो बोला – *दस रुपये जुर्माना करता हूं।*

इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते बीस-तीस रुपये तक बढ़ गये। राजेन्द्र की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करें। तबतक कॉलेज के हेडक्लर्क ने पीछे से इशारा किया कि तुम चुप रहो। राजेन्द्र चुप हो गये। बाद में पता चला, क्लर्क की गलती से उनका नाम सूची में छूट गया था।

राजेन्द्र एफ०ए० की परीक्षा में बैठे। इस बार भी उन्हें यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। अंग्रेजी, फारसी, लॉजिक आदि विषयों में उनके सबसे ज्यादा नम्बर आये। विज्ञान और गणित में उन्होंने बहुत परिश्रम किया था, लेकिन इन विषयों में औरों से कम नम्बर आये। यद्यपि सब मिलाकर वह सबसे ऊपर रहे।

इंट्रेन्स की परीक्षा में सबसे अधिक अंक मिलने के कारण उन्हें 30 रुपये की छात्रवृत्ति एक वर्ष के लिए मिली थी। इस बार एफ०ए० की परीक्षा में उससे भी अधिक अंक मिले। इस बार उन्हें 25 रुपये की छात्रवृत्ति सबसे अधिक अंकों के लिए मिली। अंग्रेजी में प्रथम होने के लिए 10 रुपये की तथा दूसरी भाषाओं में भी प्रथम होने से 15 रुपये की छात्रवृत्ति और मिली। इसे *डफ स्कॉलरशिप* कहते थे। वे छात्रवृत्तियां दो वर्षों के लिए मिलीं। इसके अलावा लॉजिक में प्रथम होने से उन्हें पुस्तकें इनाम में मिलीं।

इंटर के अंकों को देखकर राजेन्द्र ने समझा कि विज्ञान और गणित में मैं उतना सफल न हो पाऊंगा। अतः विज्ञान की ओर न जाकर उन्होंने बी०ए० की कक्षा में नाम लिखाया। बी०ए० में उन दिनों तीन विषय पढ़ने होते थे। इनमें अंग्रेजी और फिलॉसफी अनिवार्य थे। तीसरा विषय विद्यार्थी स्वयं चुनता था। राजेन्द्र ने तीसरा विषय इतिहास चुना। उन्होंने दो विषयों में ऑनर्स भी लिया।

मन
दूसरी दिशा में

अभी तक राजेन्द्र का मन पूरी तरह स्कूली शिक्षा और परीक्षा की ओर था, लेकिन अब कुछ और बातें भी प्रभाव डालने लगीं। ये बातें देश, धर्म और सामाजिक सेवा की थीं। उन दिनों श्री सतीशचन्द्र मुकर्जी ने एक संस्था बनाई थी, जिसका नाम था *डॉन सोसाइटी।* विद्यार्थी इस संस्था के मेम्बर होते थे। उन्हें इसके लिए कुछ देना नहीं पड़ता था। संस्था का उद्देश्य था—पढ़ाई में छात्रों को मदद देना, उनके चरित्र का विकास करना तथा उन्हें देश और समाज की बातों से अवगत कराना। विद्यार्थियों से सामाजिक सेवा का भी कार्य कराया जाता था। यह वहां की शिक्षा का एक आवश्यक अंग था। प्रत्येक सप्ताह दो व्याख्यान होते थे। एक लेक्चर तो किसी भी सामाजिक-राजनैतिक विषय पर होता था, दूसरा केवल गीता पर निश्चित था। गीता की कक्षा एक पंडित जी लेते थे। वह बड़े सहज ढंग से गीता समझाया करते। दूसरी कक्षा में स्वयं सतीश बाबू व्याख्यान दिया करते। कभी-कभी वह दूसरे विद्वानों को भी बुलाते थे। उन्हीं कक्षाओं में राजेन्द्र बाबू ने सिस्टर निवेदिता के व्याख्यान सुने।

व्याख्यान से पहले विद्यार्थियों को कागज़ और पेंसिल दे दिया जाता था। वे व्याख्यान का सारांश लिखते। व्याख्यान के बाद सतीश बाबू विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए गये सारांश इकट्ठा कर लेते। उन्हें अपने घर ले जाते, उनमें सुधार करते और जहां जरूरत होती, विद्यार्थियों को बुलाकर उन्हें समझाते भी। साल के अन्त में विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए गये आलेख किसी विद्वान के पास जांचने को भेजे जाते। उनमें से जो अच्छे होते,

उन पर छात्रवृत्ति और इनाम दिए जाते।

इसी प्रकार सामाजिक सेवा के प्रशिक्षण के लिए दो दुकानें खोली गई थीं। एक सस्ते कपड़ों की दुकान थी और दूसरी अन्य वस्तुओं की। ये दुकानें शाम को दो घंटे के लिए खोली जाती थीं। सामान बेचने और हिसाब रखने का काम बारी-बारी से मेम्बरों को करना पड़ता था।

इस सोसाइटी में जाने से राजेन्द्र के विचारों में नये अंकुर फूटे। उनका अनुभव और ज्ञान, जो अभी तक किताबों, शिक्षकों और परीक्षाओं के बीच चल रहा था, अब सार्वजनिक जीवन में आ गया। उन्होंने स्वयं लिखा है—

> सोसाइटी के सम्पर्क ने मेरे विचारों में हलचल मचा दी। अब परीक्षाएं मेरा ध्यान नहीं आकर्षित करती थीं। मेरी कल्पनाओं को जनता और समाज की समस्याओं ने जकड़ लिया था।

राजेन्द्र प्रसाद ने कलकत्ते में एक बिहारी क्लब की स्थापना की। उन्होंने कॉलेज की यूनियन में भी भाग लिया। एक वर्ष के लिए वह यूनियन के सेक्रेटरी भी चुने गये। इस बीच एक पत्रिका भी निकाली गई। इसमें राजेन्द्र का सहयोग रहा।

राष्ट्रीयता की लहर

वह सन् 1905 का वर्ष था। यह भारत के लिए ही नहीं, बल्कि पूरे एशिया को मोड़ देने वाला वर्ष था। भारतीयों के मन में देश को आज़ाद कराने की अग्नि तो पहले से ही सुलग रही थी, उस पर अंग्रेज़ सरकार ने एक और आहुति डाल दी। उस समय लॉर्ड कर्जन भारत के गवर्नर जनरल थे। उन्होंने बंगाल-विभाजन का आदेश दे दिया। 16 अक्टूबर, 1905 को पूर्वी बंगाल का एक नया प्रान्त बन गया। ढाका उसकी राजधानी हुई। देश के लोग नहीं चाहते थे कि बंगाल का विभाजन किया जाये। बंगाल में ही नहीं, पूरे देश में एक विरोध खड़ा हो गया। राजेन्द्र प्रसाद का मन तो पहले ही देश और समाज की ओर उन्मुख हो चुका था, उस समय भला कैसे न प्रभावित होते।

कलकत्ता और दूसरी जगहों में रोज विरोध सभाएं होती रहती थीं। उन सभाओं में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष जैसे विद्वानों के व्याख्यान हुआ करते थे। राजेन्द्र प्रसाद इन सभाओं में जाया करते थे।

इस समय स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा। स्वदेशी आन्दोलन से कलकत्ते के बिहारी विद्यार्थी बहुत प्रभावित हुए। उनके मन में बिहारी विद्यार्थियों की एक विचार गोष्ठी करने की लालसा हुई। पटना में यह गोष्ठी आयोजित करने का भार राजेन्द्र प्रसाद को सौंपा गया। राजेन्द्र प्रसाद ने बिहारी क्लब की वार्षिक सभा में उस गोष्ठी से सम्बन्धित एक प्रस्ताव रखा, जो इस प्रकार था —

इस सभा की राय में यह आवश्यक जान पड़ता है कि आगामी पूजा की छुट्टियों में बिहारी छात्रों की एक विचार-गोष्ठी की जाये। उसमें बिहार के तरुणों की एक समिति स्थापित करने पर विचार किया जायेगा। यह समिति सब तरह के उपायों से साधारणतः बिहार की और विशेषतः छात्र समुदाय की हालत सुधारने के लिए होगी।

इस प्रस्ताव के पास हो जाने पर राजेन्द्र प्रसाद पटना आये। वे विद्यार्थियों से मिले। सच्चिदानन्द सिन्हा, बिहार टाइम्स के सम्पादक, महेश नारायण तथा अन्य प्रतिष्ठित नागरिकों से मिले। इन सबके सहयोग से सन् 1906 में पटना कॉलेज के सभा भवन में इस विचार-गोष्ठी का आयोजन हुआ। इसके अध्यक्ष प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री सरफुद्दीन बने। इसमें राजेन्द्र प्रसाद ने अपना एक लिखित भाषण पढ़ा।

इस संस्था में नौजवान विद्यार्थी अधिक थे। फिर भी यह पहला अवसर था, जब समान हित के प्रश्नों पर विचार करने के लिए बिहारी लोग एकत्र हुए। आगे चलकर इस संस्था ने बिहार के इतिहास में महत्त्वपूर्ण काम किया।

फिर भी प्रथम

सभाओं और सामाजिक कार्यों में भाग लेने के कारण राजेन्द्र प्रसाद को बी०ए० की पढ़ाई और परीक्षा का उतना ध्यान नहीं रहा, न उन्होंने कठिन परिश्रम किया। फिर भी उनमें प्रतिभा तो थी ही। उन्होंने बी०ए० की परीक्षा दी और इस बार भी सबसे ज़्यादा अंक प्राप्त किए। इतिहास के ऑनर्स में उन्हें प्रथम स्थान मिला। अंग्रेज़ी ऑनर्स और दर्शन में भी अच्छे नम्बर मिले, 50 और 40 रुपयों की दो छात्रवृत्तियां भी मिलीं। तदुपरान्त कलकत्ता विश्वविद्यालय में उन्होंने एम०ए० और बी०एल० की पढ़ाई के लिए नाम लिखाया।

राजेन्द्र बाबू ने नाम तो लिखा लिया, वे पढ़ने भी लगे, लेकिन अब उनमें एक नई चेतना पैदा हो रही थी। वह चेतना यद्यपि पढ़ाई का विरोध नहीं कर रही थी, पर उन्हें ऐसा ज़रूर लगने लगा था कि पढ़ाई के साथ-साथ अब कुछ और भी ज़रूरी है—यह समाज, यह देश, देश की गुलामी, अंग्रेज़ों का हठ और उनका अत्याचार। देश के बड़े-बड़े नेता, विचारक और विद्वान इन्हीं से जूझ रहे थे, तो राजेन्द्र का मन भी बार-बार उधर ही जाता था। वे कांग्रेस के विचार को और अधिक समझना चाहते थे, उसके कार्यक्रमों में शामिल होना चाहते थे। जब भी मौका मिलता, वे शामिल भी होते।

वालंटियर की छलांग

1906 के दिसम्बर में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। राजेन्द्र पहली बार वालंटियर के रूप में उसमें शामिल हुए। अधिवेशन के पहले दिन इनकी ड्यूटी पंडाल से कुछ दूर पर थी। जब सभापति का भाषण हुआ तो ज्यादातर वालंटियर अपना स्थान छोड़ कर सभापति का भाषण सुनने चले गये। राजेन्द्र अपनी ड्यूटी पर डटे रहे। फिर दूसरे दिन से इनकी ड्यूटी पंडाल में ही लग गई। इन्होंने विषय निर्धारण समिति की सब बहसें बड़े ध्यानपूर्वक सुनीं। कांग्रेस की रीति-नीति को अच्छी तरह समझने की कोशिश की। इस निष्ठा और लगन का यह फल था कि 1911 में बिहार की ओर से वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के मेम्बर चुन लिए गये। राजेन्द्र बाबू लिखते हैं —

> मैंने कांग्रेस की कोई खास सेवा नहीं की थी, पर छात्र सम्मेलन के कारण और यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में अच्छा फल होने के कारण बिहार के सभी लोग मुझे जानते थे। सबने एक छलांग में मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में पहुंचा दिया।

विलायत जाने की धुन और अपनों का ख्याल

छात्र सम्मेलन हो जाने के बाद राजेन्द्र प्रसाद के मन में विचार उठा कि विलायत जाकर आई.सी.एस. की परीक्षा पास करनी चाहिए। मन की बात भाई को बताई तो वह बहुत खुश हुए। उन दिनों राजेन्द्र प्रसाद की बिरादरी में विलायत जाना निषिद्ध था। जो लोग विलायत पढ़ कर आये थे, उन्हें जाति से बाहर निकाला गया था। हालांकि कुछ लोग विलायत जाना बुरा नहीं मानते थे। पर राजेन्द्र के माता-पिता पुराने ख्यालों के थे। राजेन्द्र जानते थे कि वे विलायत जाने की आज्ञा नहीं देंगे। अतः यह बात उन्होंने अपने पिता से छिपा ली और भाई के साथ मिलकर चुपचाप तैयारी करने लगे। पटना के सच्चिदानन्द सिनहा और बाबू बृजकिशोर ने सहायता की। आरा के रायबहादुर बाबू हरि प्रसाद ने पैसे का प्रबन्ध किया। तब तक राजेन्द्र ने कभी अंग्रेज़ी ढंग के कपड़े नहीं पहने थे। विलायत जाना था, इसलिए अंग्रेज़ी दुकान से कपड़े भी सिलवा लिए गये। विदेश यात्रा का दिन भी निश्चित कर लिया गया।

इसी बीच राजेन्द्र प्रसाद अपने भाई के साथ कुछ रुपयों का जुगाड़ करने इलाहाबाद गये। वहां ये मुंशी ईश्वर शरण के यहां ठहरे। इलाहाबाद में इनकी ससुराल के कुछ लड़के पढ़ते थे। न जाने कैसे उन लड़कों को पता चल गया कि राजेन्द्र प्रसाद विलायत जा रहे हैं। उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद के मां-बाप को तार कर दिया।

इसके बाद की घटना राजेन्द्र प्रसाद इस प्रकार लिखते हैं —

·····तार पाते ही बाबू जी और घर के लोग बहुत घबराये। बाबू जी अस्वस्थ थे, इसलिए वे नहीं निकल सकते थे, पर मेरी मां और बहन सीधे इलाहाबाद पहुंच गईं। उन लोगों की यह गलत धारणा थी कि मैं इलाहाबाद से ही सीधे विलायत चला जाने वाला हूं। लेकिन मैं तो सलाह-बात करने और रुपयों का जुगाड़ करने गया था। वहां एक दिन रह कर सीधे फिर कलकत्ता चला आया था। जब मां इलाहाबाद पहुंची, तब मैं वहां नहीं था। मुंशी ईश्वर शरण के यहां तलाश करने पर उनको खबर मिल गई कि मैं कलकत्ता वापस चला गया। मुझे कलकत्ते में इन बातों की खबर नहीं थी। वहां तार पहुंचा कि बाबू जी बीमार हैं। मैं वहां से उनसे मिलने घर आया तो सब बातें मालूम हो गईं। वह सचमुच बीमार थे, पर बीमारी अभी कुछ कड़ी नहीं थी। वह दुखित ज़रूर थे। भाई भी आये थे। बाबू जी उनसे बहुत दुखी थे, कि मुझे विदेश भेजने का षड्यंत्र वही कर रहे थे। मेरे पहुंचते ही सब की करुणा उमड़ पड़ी। खूब जोरों से रोना-पीटना होने लगा। उन्होंने मुझे जाने से साफ मना कर दिया। कह दिया कि मैं अगर विलायत गया तो वह नहीं बचेंगे। जो बातें हुई थीं, मैंने सब साफ-साफ कह दीं। वादा भी कर दिया कि नहीं जाऊंगा। जब बाबूजी को मेरी बात पर विश्वास हो गया, तब फिर उन्होंने कलकत्ता जाने की इजाजत दे दी।

एक ज्योतिषी

राजेन्द्र जब विलायत जाने की तैयारी कर रहे थे, तो उनके दूसरे साथियों के मन में भी यही इच्छा थी कि वे भी विलायत जायें और शिक्षा प्राप्त करें। लेकिन राजेन्द्र प्रसाद का जाना तो पक्का हो गया था, दूसरों के मन में केवल आशा थी कि कभी न कभी हमें भी जाने को मिलेगा। एक दिन एक साथी ने कहा—चलो, किसी ज्योतिषी से पूछा जाये। वह एक ज्योतिषी को जानता भी था। सभी ज्योतिषी के पास गये। उसने जो कुछ बताया और उसका जो असर राजेन्द्र प्रसाद पर पड़ा, वह स्वयं लिखते हैं—

> वह एक बूढ़े ब्राह्मण थे। उनकी अवस्था प्रायः 60 वर्ष की होगी। अपने घर मैं बैठे थे। हम लोगों के जाते ही उन्होंने कहा—मैं समझ गया, तुम लोग किस काम के लिए आये हो। प्रश्न हमने कहा नहीं, अपने मन में रखा। मुझको उन्होंने उत्तर दिया कि अभी नहीं, बहुत दिनों के बाद तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। शुकदेव से उन्होंने कहा—तुम्हारी इच्छा अभी बहुत जल्दी पूरी होगी। तीसरे भाई से कहा—तुम्हारी इच्छा भी कुछ देर बाद पूरी होगी। चौथे साथी से कहा—तुम्हारी यह इच्छा नहीं पूरी होगी।

राजेन्द्र बाबू आगे लिखते हैं—

> हम लोगों ने एक रुपया दिया। प्रणाम करके वापस चले। रास्ते भर मज़ाक उड़ाते आये कि यह बूढ़ा बिल्कुल कुछ जानता नहीं। मेरी तो सब तैयारी हो चुकी है और मैं जाऊंगा नहीं, और शुकदेव प्रसाद, जिनके सम्बन्ध में अभी कोई बात नहीं हुई है, बहुत जल्द चन्द दिनों के अन्दर चले जायेंगे—

यह कैसे हो सकता है ? हम लोग हंसते-हंसते मजाक उड़ाते वापस आये। उसके बाद ही घर से तार आ गया। मेरा जाना एकबारगी रुक गया। जब मैं घर में वापस आया और यह बात तय हो गई कि मैं नहीं जाऊंगा, तब शुकदेव के जाने की बात उठी। मेरे रुपये और मेरे कपड़े लेकर एक दिन वह चले गये।

पिता की मृत्यु

अपने से ज्यादा अपनों का ख्याल राजेन्द्र के मन में हमेशा रहता था। पुरुषार्थ और महत्त्वाकांक्षा होते हुए भी उनकी प्रवृत्ति संतोष की थी। खूब पढ़-लिख कर नये विचारों का समर्थन करते थे, परन्तु अपनी संस्कृति, अपना धर्म, अध्यात्म, दर्शन उन्हें हमेशा प्यारा रहा। विलायत न जा पाने को भी उन्होंने अच्छे ही रूप में लिया। क्योंकि उसी के बाद उनके पिता की मृत्यु हो गई। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> बाबू जी की बीमारी बढ़ती गई। कुछ दिनों में उनकी हालत खराब होने लगी। खबर मिलने पर मैं कलकत्ता से और भाई डुमरावां से जीरादेई पहुंचे। मरने के पहले हम सब से भेंट हो गई। उस वक्त तक भाई के दो लड़कियां और एक लड़के—जनार्दन का जन्म हो चुका था। मेरे भी मृत्युंजय का जन्म उसी साल में हुआ था। पोता देखकर बहुत संतुष्ट रहते थे। जब बीमारी बढ़ गई तब सबको इकट्ठा करके आशीर्वाद दिया। बाबू जी की मृत्यु से घर में गड़बड़ी तो मची, हम सब दुखी भी हुए। पर मुझे एक बात की खुशी भी रही। वह यह कि अच्छा ही हुआ, कि मैं विलायत नहीं गया। अगर गया होता और उनकी इस तरह मृत्यु हो जाती तो मैं न मालूम कितना दुखी होता।

राजेन्द्र बाबू के पिता की मृत्यु सन् 1907 के मार्च महीने में हुई। तब वह एम०ए० में पढ रहे थे। परीक्षा नवम्बर-दिसम्बर में

हुई। इस परीक्षा में राजेन्द्र बाबू प्रथम नहीं आ सके। उनके कई साथी उनसे ज़्यादा नम्बर लेकर पास हुए। राजेन्द्र बाबू को इस बात का कोई दुख नहीं हुआ, क्योंकि अब की उन्होंने कोई तैयारी नहीं की थी। बल्कि सच तो यह था कि इस समय पढ़ाई और परीक्षा की ओर से उनका मन उचट गया था।

इस समय मुजफ्फरपुर कॉलेज में राजेन्द्र बाबू के एक मित्र थे—वैद्यनाथ नारायण सिंह। वह वहां प्रोफेसर थे। उन्होंने राजेन्द्र बाबू को अपने कॉलेज में पढ़ाने के लिए बुलाया, और वे वहां चले गये। लेकिन राजेन्द्र बाबू के भाई इस नौकरी से संतुष्ट नहीं थे। उनका मन था कि राजेन्द्र प्रसाद कानून की परीक्षा पास करें। अतः 10 महीने इस कॉलेज में पढ़ाने के बाद राजेन्द्र बाबू पुनः कलकत्ता चले गये।

वकालत के लिए

कलकत्ता जाने पर राजेन्द्र बाबू ने कानून की पहली परीक्षा तुरन्त पास कर ली। दूसरी की तैयारी में लग गये। उन दिनों हाई कोर्ट में बकालत करने के लिए दो वर्षों तक किसी वकील का सहायक बन कर काम करना पड़ता था। फिर जज एक परीक्षा लेते थे, जिसे पास करना पड़ता था। शमसुलहुदा साहब उस समय कलकत्ता हाई कोर्ट के मशहूर वकील थे। राजेन्द्र बाबू उन्हीं के सहायक के रूप में काम करने लगे। राजेन्द्र बाबू ने उस समय कठिन परिश्रम किया। वह भाई पर अपना भार नहीं डालना चाहते थे। उन्होंने कलकत्ते के सिटी कॉलेज में पढ़ाना शुरू किया। साथ ही उन्हें जस्टिस दिगम्बर चटर्जी के लड़के को ट्यूशन पढ़ाने का अवसर मिला। उस समय के अपने परिश्रम और अपनी निष्ठा के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है —

> मैं रोज़ सबेरे शमसुलहुदा साहब के घर पहुँच जाता। वहां दस बजे तक उनके हाथ के मुकदमों के कागज़ पढ़ता। उन पर अपना नोट, जैसा उन्होंने बता दिया था, तैयार करता। कानून की नजीरें वगैरह पढ़ कर उनके लिए सब कुछ तैयार कर देता। थोड़े ही दिनों में उन्होंने देख लिया कि मैं उनके लिए अच्छा नोट तैयार करता हूं, जिससे उनको पूरी मदद मिल जाती है और जूनियर वकील की बहुत ज़रूरत नहीं होती है।
>
> उस समय मैं एक *मेस* में रहा करता था, जो उनके घर से बहुत दूर था। कुछ दूर तक ट्राम पर जाना होता। मैं सात बजे

पहुंच जाता और दस बजे तक उनके साथ काम करता। फिर उसी तरह अपने मेस में आता, भोजन करके एक बजे हाई कोर्ट जाता। वहां मुकदमों की बहस सुनता। खास कर उन मुकदमों में बहुत जी लगता, जिनके नोट मैं तैयार करता था। संध्या को हाई कोर्ट से लौटकर फिर भवानीपुर, जो हमारे मेस से प्रायः चार मील पर था, जाकर रात में लड़के को पढ़ाता और 9-10 बजे लौट कर सोता। उस तरह काफी परिश्रम करता। काम भी मैं अच्छी तरह सीख गया। पीछे शमसुलहुदा साहब ने कहा कि तुमको आने-जाने में बहुत तकलीफ होती है और समय भी बहुत लगता है। तुम मेरे ही मकान में आ जाओ, तुम्हारे लिए जो बन्दोबस्त कहो, कर दूंगा। मैं वहां रहने लगा। तब वह रात को भी और सवेरे भी, जब 4-5 बजे उठते और ज़रूरत समझते, तो मुझे पुकार लेते। अपने साथ ही मुझे रोज़ अपनी गाड़ी में कचहरी ले जाते। उनसे घनिष्ठता इतनी बढ़ गई कि घर के लड़के की तरह मुझे मानने लगे।

जाति नहीं
आदमी का सम्मान

शमसुलहुदा साहब नामी वकील थे। मुसलमानों के नेता थे। वे मुस्लिम लीग के प्रेसीडेन्ट भी रहे थे। इधर राजेन्द्र बाबू भी कट्टर सनातनी थे। बकरीद का दिन आया तो राजेन्द्र बाबू ने समझा कि यहां गाय की कुर्बानी ज़रूर होगी, क्योंकि पूरा मुहल्ला ही मुसलमानों का था। राजेन्द्र बाबू चुपचाप बिना कुछ बताये चले गये और चार-पांच दिन मेस में अपने मित्रों के साथ रहे। जब लौट कर आये तो शमसुलहुदा साहब ने पूछा—कहां चले गये थे?

राजेन्द्र बाबू ने सही बात नहीं बताई। सिर्फ इतना ही कहा—मैं अपने मित्रों के पास चला गया था।

शमसुलहुदा साहब मुस्काये और बोले—

मैं समझ गया। तुम बकरीद के कारण चले गये थे। तुमने सोचा होगा कि यहां गाय की कुर्बानी होगी, इसलिए यहां रहना ही नहीं चाहिए। क्या तुमने मेरे साथ बेइन्साफी नहीं की? तुमने कैसे समझ लिया कि तुम्हारी भावना का मैं कुछ भी ख्याल नहीं करूंगा? तुम तो तुम हो, मेरे घर में कई नौकर हिन्दू हैं।......क्या उनकी भावना का मैं ख्याल नहीं रखता हूं। तुमको मुझ से पूछ लेना चाहिए था। मेरे घर में हिन्दू नौकरों के ख्याल से गाय की कुर्बानी नहीं होती है।

राजेन्द्र बाबू पर इस बात का बड़ा असर पड़ा। उन्होंने लिखा है—*मुझे लगा कि सचमुच मैंने उनके साथ नाइन्साफी की है।* शमसुलहुदा साहब सचमुच नेक इंसान थे। नेक इंसान का आदर भी करते थे। उन्होंने राजेन्द्र बाबू को अच्छी तरह समझ

लिया था। उन्होंने राजेन्द्र बाबू को काम ही नहीं सिखाया बल्कि पहला मुकदमा भी उन्हें दिया। राजेन्द्र प्रसाद ने 1911 के अगस्त महीने में वकालत शुरू की। जिस दिन उनका नाम लिखा गया और उन्होंने पहली बार वकालत की, उस दिन शमसुलहुदा साहब जाकर जजों के सामने बैठे और उनका उत्साह बढ़ाया।

अपने आप पर भरोसा

शमसुलहुदा साहब बंगाल के गवर्नर की इक्जीक्यूटिव काउन्सिल के मेम्बर हो कर जाने वाले थे। उन्होंने कई मुकदमें राजेन्द्र प्रसाद को दिए और कहा—अगर ठीक काम करोगे तो मुवक्किल तुमसे ही काम लेते रहेंगे। राजेन्द्र बाबू को अपने पर भरोसा था। सच पूछो तो इसी भरोसे ने उन्हें ऊपर उठने के कई अवसर दिए। एक बार शमसुलहुदा साहब का दिया हुआ एक मुकदमा पेश हुआ। मुवक्किल ने उस मुकदमे में एक दूसरा वकील भी कर लिया था। राजेन्द्र प्रसाद की तो आदत थी कि मुकदमे के कागज़ खूब अच्छी तरह देख लिया करते थे। उधर दूसरे वकील थे तो सीनियर पर उतनी गहराई तक नहीं उतरे थे। मुकदमा जस्टिस सर आशुतोष मुखर्जी की अदालत में था। वह लॉ कॉलेज के वाइस चान्सलर भी थे। राजेन्द्र बाबू सीनियर वकील की मदद कर रहे थे और नजीर पर नजीर उन्हें देते जा रहे थे। सर आशुतोष राजेन्द्र बाबू की तत्परता और विद्वता देख रहे थे। उन्होंने इन्हीं से कहा—तुम सारी नजीरें बता दो, मैं किताबें मंगा लूंगा। सर आशुतोष ने इस मुकदमे का बहुत अच्छा फैसला लिखाया, जो बाद में रिपोर्ट में छपा।

उस मुकदमे के दो दिन बाद राजेन्द्र प्रसाद के एक वकील मित्र ने उनसे पूछा—*तुम्हें लॉ कॉलेज में प्रोफेसर की जगह मिले तो मंजूर करोगे?* राजेन्द्र बाबू को आश्चर्य हुआ। उन्हें अभी मुश्किल से दो साल हुए थे। उन जैसे वकील के लिए यह बहुत बड़ा पद था। उन्होंने मित्र से पूछा—*मैंने तो दरख्वास्त भी नहीं दी, न किसी से कहा।* मित्र ने कहा—*तुमने किसी दिन सर*

आशुतोष की अदालत में काम किया था। तुम्हारे काम से वह बहुत खुश हैं। तुम उनसे मिलो। राजेन्द्र बाबू सर आशुतोष से मिले और लॉ कॉलेज में प्रोफेसर हो गये।

इसी प्रकार राजेन्द्र बाबू को जस्टिस दिगम्बर चटर्जी से भी प्रेरणा मिली। चटर्जी साहब को इतना तो मालूम था कि राजेन्द्र प्रसाद ने यूनिवर्सिटी की परीक्षायें बहुत अच्छे अंक लेकर पास की हैं। सच पूछो तो इसी योग्यता से प्रभावित होकर उन्होंने अपने लड़के को पढ़ाने के लिए राजेन्द्र बाबू को नियुक्त किया था। राजेन्द्र बाबू चटर्जी महाशय के लड़के को पढ़ाते जरूर थे, पर चटर्जी महाशय से उनकी कोई घनिष्ठता नहीं थी। जब चटर्जी साहब को मालूम हुआ कि राजेन्द्र प्रसाद वकालत करने जा रहे हैं, तो एक दिन उन्हें बुला लिया और बात करने लगे—

—तुम्हारा कोई सम्बन्धी वकील है?

—कोई नहीं।

—यह तो बहुत अच्छा है।

राजेन्द्र बाबू को आश्चर्य हुआ। उनकी धारणा थी कि अगर कोई मेरा सगा-सम्बन्धी वकील होता तो शुरू-शुरू में मदद करता, मुझे मुकदमे देता। लेकिन जस्टिस चटर्जी ने जो बात कही, वह किसी भी लगनशील और आत्मसम्मानी व्यक्ति के लिए मंत्र के समान है। उन्होंने कहा—

तुम अपना सौभाग्य समझो कि तुम्हारा कोई सम्बन्धी वकील नहीं है और खास करके बहुत नामी वकील नहीं है। अगर कोई होता तो शायद कुछ मुकदमे उसके सम्बन्ध से तुमको मिलते, पर मुवक्किल तुमको वकील नहीं मानता। वह तो यह समझता कि बड़े वकील साहब की खातिर किसी एक निकम्मे आदमी को रख लेता हूं। उसका तुम पर न विश्वास होता और न तुम्हारे लिए उसके दिल में कोई प्रतिष्ठा होती। इसलिए वह दूसरा वकील भी जरूर रखता। तुम भी यह समझ कर कि दूसरे को बहस करनी है, अपनी तरफ से कोई

तैयारी नहीं करते। इस तरह तुम काम में ढिलाई करते। तुमको बहस करने का भी कम मौका मिलता। आगे चल कर अपने परिश्रम से अगर तुम अच्छे वकील भी बन जाते तो जब वह मुवक्किल आता, तुम्हें याद दिलाता कि शुरू में उसने ही तुमको वकील रखा था। इसलिए तुमको भी लिहाज होता और तुम उससे रुपये नहीं ले सकते।...गरीब तुम्हारे पास शायद कोई आता तो अपनी आदत के अनुसार उस पर अधिक ध्यान नहीं देते, क्योंकि तुम्हारे पास धनी मुवक्किल आ ही चुके होते और तुमको इसका गर्व भी होता। जब कोई सगा-सम्बन्धी मदद करने वाला वकील नहीं है तो इस प्रकार का कोई धनी मुवक्किल तुमको नहीं मिलेगा। गरीब मुवक्किल यह जानकर आयेगा, कि तुम अच्छे पढ़े-लिखे हो। रुपये कम देगा, पर अपना सर्वस्व तुमको ही समझेगा। उसका दूसरा कोई वकील नहीं होगा। तुमको ही उसके मुकदमे में सब कुछ करना होगा। इसलिए जहां तक हो सकेगा, तुम अपने को अच्छी तरह तैयार करोगे। जब मुकदमा जीत जाओगे, वह दस और गरीबों से तुम्हारी तारीफ करेगा। वह विज्ञापन का काम करेगा। दूसरे गरीब मुवक्किल आयेंगे। इस तरह तुम्हारा नाम होगा। इसमें न किसी की मदद रहेगी, न एहसान। जब इस प्रकार वकालत चल निकलेगी, बड़े मुवक्किल खुद आयेंगे। वे तुम्हारी खुशामद करेंगे। पुराना एहसान नहीं जता सकेंगे और तुम उनसे इज्जत के साथ रुपये ले सकोगे। इसलिए मेहनत से काम करना सीखो। वकालत अच्छी चल निकलेगी।

जस्टिस चटर्जी की बातें अक्षरशः सच निकलीं। राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

उनकी बातों से मेरे दिल में बहुत हिम्मत बंधी। उन्होंने जितनी बातें कहीं थीं, अक्षरशः सत्य निकलीं। शुरू में केवल

गरीब मुवक्किल मिले। साथ ही मुझे शुरू से बिना किसी दूसरे वकील की मदद के, काम करने का सुअवसर मिला। इससे मेहनत भी करनी पड़ती और अपनी बुद्धि भी खुलती। एक ही दो ऐसे मुवक्किल मिले जो धनी कहे जा सकते हैं। उनसे पुराना सम्बन्ध था, इसलिए वे मेरे पास आये, नहीं तो और सब गरीब ही थे।

बड़प्पन के लक्षण

कलकत्ते में पढ़ते और वकालत करते हुए भी राजेन्द्र बाबू जन सेवा और देश सेवा के कामों में लगे रहते थे। वे डॉन सोसाइटी के क्रियाशील सदस्य थे। इस संस्था में बड़े-बड़े विद्वानों और राजनेताओं के भाषण हुआ करते थे। कभी-कभी राजेन्द्र बाबू को भी अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता था। तब वे बहुत सरल, सहज और स्पष्ट भाषा में अपने विचारों को रखते थे। उनके भाषण में एक देशभक्त वकील के विचार होते थे जिसमें राजनीति और विधि व्यवस्था दोनों का विश्लेषण रहता था। एक बार उनके एक भाषण को सुनकर तत्कालीन पत्रिका *मॉडर्न रिव्यू* ने लिखा था—

> राजेन्द्र प्रसाद के लिए भविष्य के गर्भ में सब कुछ रखा है, इसमें हमें ज़रा भी आश्चर्य नहीं है। ईश्वर इनको स्वस्थ रखे। भारतीयों को प्राप्त हो सकने वाला कोई भी पद उनकी महत्त्वाकांक्षा से परे नहीं होगा। हमें आशा है कि वह हाई कोर्ट में न्यायाधीश का पद प्राप्त करेंगे और इस सम्बन्ध में नियुक्ति पत्र राष्ट्रीय कांग्रेस के किसी अधिवेशन में प्राप्त होगा, जैसा कि लाहौर में राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुए न्यायाधीश श्री चन्द्रावरकर को प्राप्त हुआ था।

तब राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष का पद बहुत बड़ा माना जाता था। वैसा ही बड़ा पद था हाई कोर्ट के न्यायाधीश का। लोग जानते थे कि राजेन्द्र बाबू के लिए कोई पद बड़ा नहीं है, वे सब

प्राप्त कर सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता उस समय राजेन्द्र बाबू के उत्साह और विद्वता को देख कर कहा करती थीं—*यह भारत का भावी नेता है*। कितनी सत्य थी भगिनी निवेदिता की भविष्यवाणी। राजेन्द्र बाबू केवल पद पाने और जीविका कमाने के लिए नहीं पैदा हुए थे। उनकी प्रतिभा देश के लिए थी।
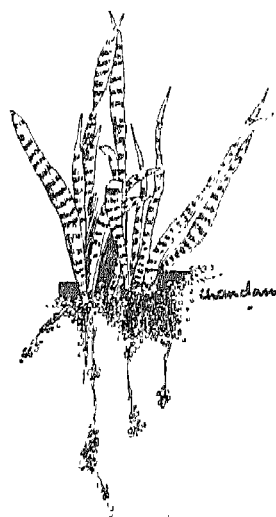
गोपाल कृष्ण गोखले और उनकी परख

राजेन्द्र बाबू की वकालत उस समय अच्छी चल रही थी। तभी गोपाल कृष्ण गोखले कलकत्ता आये। उन्होंने उस समय *सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी* बनाई थी। उसमें वे ऐसे देशभक्तों को शामिल करते थे जो आजीवन देश सेवा का व्रत ले सकें। उस समय श्री गोखले देश के महान नेता माने जाते थे। उन्होंने ही गांधी जी को सेवा का मंत्र दिया था। ऐसे नेता को भी राजेन्द्र के गुणों की महक मिल चुकी थी। उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को बुलवाया, कुछ पारिवारिक और शिक्षा सम्बन्धी बातें पूछीं और कहा—

> हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, बहुत रुपये तुम पैदा कर सको। बहुत आराम और ऐशो इशरत में दिन बिताओ। बड़ी कोठी, घोड़ागाड़ी, नौकर इत्यादि दिखावट के सामान, जो अमीरों को हुआ करते हैं, तुम्हें सब प्राप्त हों। पर मुल्क का भी दावा कुछ लड़कों पर होता है, और चूंकि तुम पढ़ने में अच्छे हो, इसलिए तुम पर यह दावा और अधिक है।

श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने बारे में बताते हुए कहा—

> मेरे सामने भी यही प्रश्न आया था। मैं गरीब घर का आदमी था। मेरे घर के लोग बहुत आशा रखते थे कि जब मैं पढ़-लिखकर तैयार हो जाऊंगा तो बहुत रुपये कमाऊंगा और सब को सुखी बना सकूंगा। जब मैंने उनकी सब आशाओं पर पानी फेरकर देश सेवा का व्रत लिया तो मेरे

भाई इतने दुखी हुए कि कुछ दिनों तक वे मुझसे बोले तक नहीं। पर कुछ दिनों के बाद वे सब बातें समझ गये और फिर मेरे साथ खूब प्रेम करने लगे। हो सकता है कि यह सब तुम्हारे साथ भी हो, पर इतना विश्वास रखो—सब लोग अन्त में तुम्हारी पूजा करने लगेंगे।

इसी प्रकार डेढ़ घंटे तक श्री गोखले ने राजेन्द्र बाबू से बात की और अन्त में कहा—*ठीक इस समय उत्तर देना जरूरी नहीं है। विचार करके एक दिन फिर मिलो, तब अपनी राय दो।*

श्री गोखले के बात करने का तरीका ऐसा था कि राजेन्द्र बाबू पर उसका बहुत गहरा असर पड़ा। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

हम वहां से एक प्रकार से खोये हुए से निकले। अपने मेस में वापस आये। उनकी बातों का इतना असर पड़ा था कि कोई दूसरी बात सूझती ही न थी। मुझे तो कई दिनों तक नींद नहीं आई। खाना-पीना सब कुछ बरायनाम रह गया। ····इससे पहले कभी इस तरह से यह प्रश्न सामने नहीं आया था और न कभी ऐसे बड़े आदमी से मिल कर इस प्रकार के मार्मिक शब्दों के सुनने का ही सौभाग्य हुआ था। एक ओर उनकी बताई देश के लिए हम जैसे लोगों की सेवा की जरूरत, दूसरी ओर भाई पर घर का सारा बोझ लादना। मेरे भी दो पुत्र हो चुके थे। भाई के भी तीन पुत्रियां थीं और एक लड़का। मां अब तक जीवित थीं। वह क्या कहेंगी। घर के दूसरे लोगों को कैसा दुख होगा, इत्यादि भावनायें इतनी सताती रहीं कि जैसा ऊपर कहा है—खाना-पीना तक प्रायः छूट गया। ····भाई कलकत्ता में ही थे, पर उनसे भी नहीं कहा। किसी दूसरे साथी से भी नहीं कहा। हाई कोर्ट जाना भी बन्द रहा। टहलना घूमना छूट गया। कहीं न कहीं एकान्त ढूंढ़ कर बैठना और चिन्ता करना, यही एक काम रह गया। प्रायः

दस-बारह दिनों तक यही सिलसिला चला। भाई को कुछ शक हुआ कि तबियत नहीं ठीक है। उनको कुछ कह कर टाल दिया। ····कई दिनों की चिन्ता के बाद मैंने एक दिन निश्चय किया कि मुझे माननीय गोखले की बात मान कर उनकी सोसाइटी में शरीक हो जाना चाहिए।

भाई का प्रेम
और
वह पत्र

राजेन्द्र बाबू ने निश्चय तो कर लिया, लेकिन उनकी हिम्मत नहीं पड़ी कि यह बात खुलकर अपने भाई से कहें। उन्हें डर था कि यह बात सुन कर भाई को बहुत दुख होगा। इसलिए उन्होंने एक लम्बा पत्र लिखा। पत्र इस प्रकार था—

कलकत्ता
1.3.1910
मंगलवार

पूज्य भाई,

आप एक ऐसे व्यक्ति के पत्र को पाकर आश्चर्यचकित होंगे, जो यहां आपके साथ रात-दिन बिता रहा है। कुछ बातें हैं जो मुझे आपको लिखने के लिए बाध्य करती हैं। मैंने अनेक बार अपने मन की बातें आपसे कहने का विचार किया। पर एक भावुक व्यक्ति होने के नाते मैं आमने-सामने आपसे बातें नहीं कर सका।·····

आपको याद होगा कि करीब 20 दिन पहले मैं माननीय गोखले जी से मिलने गया था। मेरे सामने उन्होंने *सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी* में सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा। ·····इस पर लगातार 20 दिन तक सोचते रहने के बाद मैं समझता हूं कि मेरे लिए अच्छा होगा कि अपने भाग्य को देश के साथ मिला दूं। मैं जानता हूं कि मुझसे—जिस पर परिवार की सारी आशायें केन्द्रीभूत हैं—ऐसी बातें सुनकर आपके हृदय को एक भारी धक्का लगेगा·····लेकिन मेरे भैया, मैं एक उच्चतर और महत्तर

पुकार भी अपने हृदय में महसूस करता हूं। .....मुझे विश्वास है कि मैं जो आपको प्यार करता हूं, वह इसलिए नहीं कि आप पारिवारिक कार्यों का प्रबन्ध और हम लोगों की सहायता कर रहे हैं। मैं यह भी निश्चित मानता हूं कि आप मुझे जो प्यार करते हैं, वह इसलिए नहीं कि आप परिवार के लाभ के लिए कुछ कमाने की मुझसे आशा रखते हैं। हम लोगों का प्रेम एक अधिक ठोस नींव पर स्थित है। एक-दूसरे के कारण कितनी ही असुविधायें और तकलीफें हम लोगों को क्यों न उठानी पड़ें, हमारे परस्पर प्रेम में कुछ कमी नहीं आयेगी। बल्कि मेरा सुझाव तो इस बात पर विश्वास करने की ओर है कि वह अधिक सुदृढ़ तथा टिकाऊ होगा। इसलिए मैं आप के सामने प्रस्ताव रखता हूं कि 30 कोटि के हितार्थ आप मुझे उत्सर्ग करें।

श्रीमान् गोखले की सोसाइटी में सम्मिलित होना मेरे लिए कोई व्यक्तिगत त्याग की बात नहीं है। मुझे इस तरह की शिक्षा पाने का लाभ प्राप्त हुआ है कि मैं जैसी भी परिस्थिति में पड़ जाऊं, मैं अपने को उसी के अनुकूल बना सकता हूं। मेरा रहन-सहन भी ऐसा सीधा-सादा रहा है कि मुझे आराम के लिए किसी खास तरह के सरो सामान की ज़रूरत नहीं पड़ सकती। सोसाइटी से जो कुछ मुझे मिलेगा, वही मेरे लिए काफी होगा। .....यदि मैं कमाऊं तो, जानता हूं कि कुछ रुपया हासिल कर सकूंगा, और शायद इसके द्वारा मैं उस तथाकथित समाज में अपने परिवार का दर्जा ऊंचा करने में भी समर्थ होऊंगा, जहां लोग अपनी लम्बी थैली के कारण ही बड़े गिने जाते हैं, अपने विशाल हृदय के कारण नहीं। पर इस क्षणभंगुर संसार में सम्पत्ति, पद, मर्यादा सभी नष्ट हो जाते हैं। लोग जितने धनी होते जाते हैं उतनी ही उनकी आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। लोग समझते हैं कि धन पाकर हम संतुष्ट होंगे, पर जिन्हें कुछ भी ज्ञान है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि सुख बाह्य कारणों से नहीं मिलता, बल्कि वह हृदय की उपज है। एक गरीब अपने थोड़े

रुपये से अधिक संतुष्ट रहता है बनिस्वत एक अमीर आदमी के, जिसके पास लाखों रुपये रहते हैं। ऐसी अवस्था में दरिद्रता को तुच्छ नहीं समझना चाहिए। दुनिया के महापुरुष पहले महा दरिद्र ही रहे हैं। वे आरम्भ में खूब सताए गए हैं, और नीची नज़र से देखे गए हैं। पर हंसी उड़ाने वाले धूल में मिल गए। ····अतएव उन तथाकथित सामाजिक व्यक्तियों के उपहास और घृणा की परवाह न करें, जिनकी आत्मा और हृदय में विशालता नहीं है।

मेरे भइया, आप विश्वास रखें यदि मेरे जीवन में कोई महत्त्वाकांक्षा है, तो वह यही है कि मैं देश सेवा में काम आ सकूं। ·····आपको याद होगा कि आपने ही सबसे पहले इन सुन्दर भावों को, इन उच्च विचारों को मेरे मन में आरोपित किया था। जब मेरे इंग्लैंड जाने की बात हो रही थी, मैं नहीं ज़ानता था कि उस वक्त आप क्या सोचते थे, या क्या महसूस करते थे, पर मेरी तो आई०सी०एस० की ओर कभी आसक्ति नहीं थी, मैं अनुभव करता था कि उससे मेरी कार्यशीलता बहुत संकुचित हो जायेगी। वह एक अवसर था, जब मैंने अपना हृदय आपके सामने खोल कर रखा था और उसके उत्तर में आपका हृदय भी खुल गया था। वैसा ही यह दूसरा अवसर है। साहस करें और जो मार्ग मैं पकड़ना चाहता हूं उस पर चलने में आप अपनी सहमति दें। पर यदि मुझे मालूम हो कि आप सहमति नहीं देना चाहते, तो मैं केवल दुखी होऊंगा। लेकिन इस पर मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा। ····यदि आप मुझे रोक रखेंगे, तो शेष जीवन बड़ा दुःखमय हो जायेगा। आपने मेरे लिए जो पेशा चुन रखा है, उसमें सफलता पाना भी संदेहजनक हो जायेगा। मुझे दुखी बनाना आपका अभिप्राय कभी नहीं हो सकता। ·····मैं जानता हूं कि मैं प्रति मास कई सौ रुपये कमाऊंगा—कई हजार रुपये महीने भी हो सकते हैं—पर क्या दुनिया में ऐसे अनगिनत व्यक्ति नहीं हैं, जिनके पास हज़ारों, लाखों और करोड़ों की पूंजी है, पर उनकी कोई परवाह नहीं करता, ·····पर दूसरी ओर दृष्टि डालें, कौन

सा राजकुमार है, जिसे एक गोखले के समान प्रभाव, पद या मर्यादा प्राप्त हो? और क्या वे एक गरीब आदमी नहीं हैं? क्या हम लोग उनके परिवार से भी ज्यादा गरीब हैं? अगर लाखों व्यक्ति दो या तीन रुपये महीने से काम चला लेते हैं, तो हम लोग भला सौ रुपये से क्यों नहीं चला सकते?.....

मुझे अपने भरण-पोषण के वास्ते आपको कुछ देने की जरूरत नहीं पड़ेगी.....मुझे वह सोसायटी से मिल जायेगा। परिवार पोषण के लिए भी मुझे कुछ मिलेगा, जिसे मैं आपके पास भेज दिया करूंगा। इससे आपको मुश्किल से ही कुछ सहायता मिल सकेगी, परन्तु तो भी कुछ काम की हो सकती है, और अब आपको तीस से संतोष करना होगा, जब आप तीन हजार की उम्मीद करते थे। सोसायटी बाल बच्चों की शिक्षा के लिए भी कुछ देती है। अतएव मैं आपको उन सबों की शिक्षा के लिए प्रबन्ध करने की तकलीफ नहीं दूंगा। मैं उनकी खुद खबर लूंगा और उन्हें शिक्षा दूंगा।

मेरे भाई, इस पर विचार करें और अपनी राय बतायें।.... दरिद्र को स्वेच्छा से अपना कर और थोड़े समय के लिए सामाजिक हीनता को भी स्वीकार कर देवोपम महानता दिखलावें। दिखला दें कि मनुष्य स्वतंत्र विचार और महान हृदय रखता है—और दुनिया के समक्ष साबित कर दें कि आज भी दुनिया उच्च विचार वालों से बिल्कुल रहित नहीं है। साबित कर दें कि ऐसे मनुष्य भी हैं, जिनके लिए रुपये-पैसे तुच्छ वस्तु हैं—जिनके लिए सेवा ही सब कुछ है। लाखों की और.....अपने निकटतम और प्रियतम की भी, कृतज्ञता का भाजन बनें।

मैं अपनी पत्नी को भी इसके सम्बन्ध में लिख रहा हूं। मैं माता जी को नहीं लिख सकता। वृद्धावस्था में उन्हें इससे भारी कष्ट पहुंच सकता है।

आपका प्यारा
राजेन्द्र

राजेन्द्र बाबू ने यह पत्र शाम को भाई के बिस्तर पर रख दिया। उस समय भाई कहीं टहलने गये थे। राजेन्द्र बाबू भी पत्र रख कर कॉलेज स्क्वायर में जाकर बैठ गये। भाई जब लौट कर आये, उन्होंने पत्र पढ़ा तो बेहाल हो गये। उन्होंने राजेन्द्र बाबू को इधर-उधर खोजा। जब राजेन्द्र बाबू मिले, तब वे फूट-फूट कर रोने लगे। भाई का रोना देख कर राजेन्द्र बाबू भी रो पड़े। दोनों भाइयों में डेढ़ घंटे तक बातें होती रहीं। राजेन्द्र बाबू सोसायटी में शामिल होने का आग्रह करते रहे और भाई यही कहते रहे—*मैं तुम्हें न रोकता, लेकिन इतने बड़े परिवार का भार मैं अकेले न उठा पाऊंगा*। अन्त में दोनों भाई जीरादेई गये। वहां यह बात मां, चाची और बहन के सामने रखी गई। मां तो राजेन्द्र बाबू से इतना प्रेम करती थीं, कि कभी कुछ कहती ही नहीं थीं, उस दिन भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। लेकिन बड़ी बहन तेज थीं। वह कहने लगीं—*तुमने विलायत जाने की बात उठा कर बाबूजी को रुलाया और अब इस उम्र में साधू बनना चाहकर भाई को रुलाते हो*। और इतना कह कर वह खुद रोने लगीं। घर भर में कोलाहल मच गया। राजेन्द्र बाबू तो कलकत्ते में ही भाई को दुखी देखकर ही हिम्मत हार चुके थे। यहां रही सही आशा भी टूट गई। उन्होंने निश्चय किया, गोखले की सोसाइटी में नहीं शामिल होंगे।

उन्होंने भाई को विश्वास दिलाया—

> मैंने कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया, ईश्वर ने चाहा तो कभी करूंगा भी नहीं। यद्यपि मातृभूमि की सेवा का विचार मैं दूर नहीं कर सकता, थोड़ा बहुत जो भी कर सकूंगा, करूंगा, लेकिन कभी आपके लिए अधिक दुख का कारण न बनूंगा, आप सब को प्रसन्न देखकर प्रसन्न होऊंगा।

इसके थोड़े ही दिन बाद राजेन्द्र बाबू की मां की मृत्यु हो गई।

भाई की लड़की सयानी हो गई थी। एक अच्छा लड़का मिल तो गया, लेकिन दहेज और लेन-देन की प्रथा ने दोनों भाइयों को चिन्ता में डाल दिया। राजेन्द्र बाबू ने स्वयं लिखा है—

> सब कुछ होने पर भी घर में रुपये तो थे नहीं। अन्न तो खेतों में पैदा होता था, इसलिए उसकी बहुत चिन्ता नहीं थी, पर नगद खर्च के लिए हम दोनों भाइयों को कर्ज लेना पड़ा।
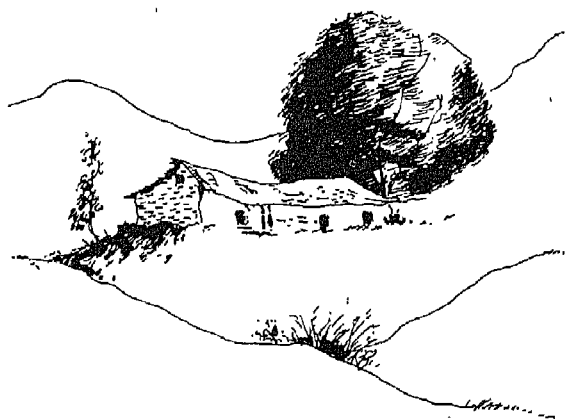
उजबक वकील
या फिर
बिहार का पहला आदमी

कलकत्ता में वकालत करते समय राजेन्द्र बाबू जिसके भी सम्पर्क में आये, सबने उनकी सराहना की। कलकत्ता हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस सर लॉरेन्स जैनकिन्स ने चलते समय राजेन्द्र बाबू को अपना हस्ताक्षर युक्त एक चित्र दिया था। राजेन्द्र बाबू ने जिस दिन से वकालत शुरू की थी, आरा के राय बहादुर हरिहर प्रसाद ने अपनी जमींदारी के सारे मुकदमे उन्हीं को सौंप दिये थे। थोड़े ही दिनों के अन्दर राजेन्द्र बाबू रासबिहारी घोष और कुलवंत सहाय जैसे प्रख्यात वकीलों के सम्पर्क में आ गये थे। इतना सब होते हुए भी प्रारम्भ के दिनों में वे अपने स्वभाव और सीधेपन के कारण हमेशा अपरिचित से रहते थे। कभी आगे बढ़ कर स्वयं अपना परिचय नहीं देते थे। इससे कभी-कभी उन्हें बड़ी मजेदार स्थितियों का सामना करना पड़ता था।

राजेन्द्र बाबू को वकालत शुरू किए अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि एक मुवक्किल के मुख्तार अपील दायर करने के लिए आये। उन्होंने राजेन्द्र बाबू को जूनियर वकील के रूप में लिया और कहा कि एक सीनियर वकील भी रखेंगे। उन्होंने एक वकील का नाम भी लिया, जिसकी वकालत बहुत जोरों पर चलती थी। उनके हाथ में बिहार के बहुत से मुकदमे रहा करते थे। राजेन्द्र बाबू को खुशी हुई कि अच्छे वकील के साथ काम करने का मौका मिलेगा। लेकिन राजेन्द्र बाबू इन वकील महाशय से आज तक मिले नहीं थे।

राजेन्द्र बाबू ने कागज पढ़ कर अपील की दरखास्त लिख ली और मुख्तार के साथ सीनियर वकील साहब के घर गये। शाम

का समय था। वकील साहब कागज पत्र समेट ही रहे थे कि तब तक ये लोग पहुंच गये। वकील साहब मुख्तार को जानते थे। उन्होंने उससे पूछा—*क्या काम है?* मुख्तार ने कहा—*एक दोयम अपील दायर करनी है*। वकील साहब रात में काम नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने मुख्तार से कहा—*कल आना*।

वे लोग दूसरे दिन पहुंचे। वकील साहब ने मुख्तार से पूछा—
किसी जूनियर से दरखास्त वगैरह लिखवाई या नहीं ?
—सब तैयार है। मुख्तार ने जवाब दिया।
वकील ने फिर पूछा—
जिस जूनियर से दरखास्त लिखाई है उसका नाम क्या है ?
—राजेन्द्र प्रसाद।

राजेन्द्र बाबू वहीं बैठे थे। लेकिन वकील को क्या पता कि यही राजेन्द्र प्रसाद हैं। वकील साहब मुख्तार पर बिगड़ गये, बोले—

न मालूम कैसा उजबक वकील तुमने रखा है, जिसको मैं जानता भी नहीं। सब काम मुझे ही करने होंगे। वह न कुछ जानता होगा, न कुछ समझेगा।

मुख्तार ने फिर भी नहीं बताया कि यही राजेन्द्र प्रसाद हैं। उसने कहा—*वह नये हैं, मगर बहुत तेज हैं*।

क्या खाक तेज हैं। उन्होंने फिर कुछ उल्टा-सीधा कहा। तब मुख्तार ने राजेन्द्र बाबू की ओर इशारा किया—*यही तो हैं*।

अब तो वकील साहब पसीने-पसीने हो गये। राजेन्द्र बाबू से बोले—

तुमको आते ही मुझसे जान-पहचान कर लेनी चाहिए थी। मेरा मतलब तुम्हारी शिकायत करने का नहीं था। मैं तुमको जानता नहीं हूं, इसलिए कहा कि कोई नया होगा, काम ठीक जानता नहीं होगा।

राजेन्द्र बाबू ने कहा—*आप का कहना स्वाभाविक था। मैं तो अभी बिल्कुल नया हूं। मैंने आपकी बात का बुरा नहीं माना।*

दूसरे दिन कचहरी में इन्हीं वकील साहब ने राजेन्द्र बाबू की लिखी दर्खास्त पढ़ी, तो बहुत खुश हुए। दूसरे वकीलों से राजेन्द्र बाबू की तारीफ की। राजेन्द्र बाबू ने इन वकील साहब के साथ बहुत काम किया और ये राजेन्द्र बाबू को हमेशा मानते रहे। बस, एक बात में ही वे राजेन्द्र बाबू से चिढ़ते थे और हमेशा कहते भी थे कि तुम पोशाक बहुत ऊलजलूल पहनते हो, और पोशाक के लिए राजेन्द्र बाबू ने कभी विशेष ध्यान नहीं दिया।

इसी प्रकार की एक घटना और हुई। राजेन्द्र बाबू की तो आदत ही थी कि जिससे कोई काम न हो, उससे बेमतलब नहीं मिलते थे। वकालत करते डेढ़-दो साल हो गये थे, फिर भी अभी तक डॉ० रासबिहारी घोष से नहीं मिले थे। वे बहुत प्रसिद्ध वकीलों में से थे। यद्यपि राजेन्द्र बाबू ने डॉ० रासबिहारी के खिलाफ एक मुकदमा जीत लिया था, लेकिन उनके साथ काम करने का कभी मौका नहीं मिला था। सौभाग्य से गया का एक मुकदमा मिल गया। इसमें एक ओर से सर ए० पी० सिन्हा थे और दूसरी ओर से राजेन्द्र बाबू के साथ साथ डॉ० रासबिहारी घोष और बाबू कुलवंत सहाय थे। एक वकील गया का भी था। इसमें सब से जूनियर राजेन्द्र बाबू ही थे।

उस समय भी बड़े वकीलों और बैरिस्टरों के पास बहुत मुकदमे रहते थे। जब दूसरे पक्ष की बहस होती, तब वे किसी दूसरे इजलास में रहते। सिर्फ जवाब देने के समय आ जाते। कभी-कभी वे नहीं भी पहुंच पाते। तब जूनियर को ही सारा काम करना पड़ता। इसी तरह की परिस्थिति में राजेन्द्र बाबू ने डॉ० रास बिहारी के खिलाफ मुकदमा जीता था। लेकिन इस मुकदमे में तो वह उनके साथ काम कर रहे थे।

यह मुकदमा काफी बड़ा था। इसमें तीन-चार दिनों तक बहस होती रही। सर सिन्हा की बहस नोट करने का काम राजेन्द्र

बाबू का था, क्योंकि वही सबसे जूनियर थे। सर सिन्हा आहिस्ता-आहिस्ता, और बहुत अच्छी बहस करते थे। राजेन्द्र बाबू ने सर सिन्हा की बहस का अच्छा नोट तैयार कर लिया। शाम को सब वकील डॉ० रास बिहारी घोष के घर पर गये। डॉ० घोष ने बहस का सारा नोट बड़े ध्यान से पढ़ा। राजेन्द्र बाबू डर रहे थे और उत्सुक भी थे कि देखें नोट पढ़ कर क्या कहते हैं क्योंकि डॉ० घोष बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। जूनियर से ज़रा भी गलती होती तो बहुत बिगड़ते थे। उनके इस स्वभाव को जज लोग भी खूब जानते थे। कभी-कभी वे इजलास में ही कागज-किताब पटक दिया करते थे। राजेन्द्र बाबू का तो यह पहला ही मौका था। वे भी डर रहे थे। डॉ० घोष ने नोट पढ़ा, अपना सिर उठाया और पूछा—*यह नोट किसने तैयार किया है?* सभी वकील डरे हुए से थे। राजेन्द्र बाबू सोच रहे थे, अब कुछ होने वाला है। बाबू कुलवन्त सहाय ने राजेन्द्र बाबू की ओर इशारा करते हुए कहा—*इन्होंने*। डॉ० घोष ने पूछा—*तुम कब से काम करते हो, मैं तो तुमको जानता तक नहीं*। राजेन्द्र बाबू कुछ नहीं बोले। वे तो भीतर ही भीतर कांप रहे थे। बाबू कुलवन्त सहाय ने कहा, *इन्होंने थोड़े ही दिनों से वकालत करनी शुरू की है*। नाराज होने के बजाय डॉ० रास बिहारी घोष ने राजेन्द्र बाबू की पीठ ठोंकते हुए कहा—*शाबाश, ऐसे परिश्रम से काम करो, तुम बहुत अच्छे वकील हो जाओगे*।

इसी मुकदमे में एक दूसरी घटना भी हुई। डॉ० रास बिहारी ने मुकदमे से सम्बन्धित एक बात रखी और सभी जूनियर वकीलों से पूछा—*इसका कोई सबूत है या नहीं*। राजेन्द्र बाबू तो चुप रहे। गया के वकील ने कहा—*इसका कोई सबूत नहीं*। डॉ० घोष ने कहा—*जब सिन्हा ने कहा है कि सबूत है, तब जरूर कुछ होगा। ध्यान से आज रात सब कागज देख लो, कल सबेरे मुझे सही जवाब देना*।

पता नहीं, गया के वकील ने कागज देखे, या नहीं देखे, लेकिन

डॉ० रास बिहारी ने रात में पढ़ा और निशान लगा लिया। दूसरे दिन फिर उन्होंने वकील से पूछा—*सबूत मिला या नहीं*। वकील ने फिर वही जवाब दिया। इस पर डॉ० रास बिहारी बिगड़ गये। उन्होंने उस वकील का बनाया हुआ नोट फेंक दिया और कहा—मैं तुम्हारे बनाये हुए नोट पर बहस करता हूं, और तुम धोखा देते हो। अब तुम पर कैसे विश्वास कर सकता हूं।

राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—*मैंने दोनों ही बातें एक मुकदमे में देख लीं और अपना भाग्य सराहा कि मुझसे गलती नहीं हुई थी*।

इन्हीं दिनों मुजफ्फरपुर कॉलेज के बाबू वैद्यनाथ नारायण सिंह भी कलकत्ता आ गये थे। उन्होंने राजेन्द्र बाबू के साथ हाई कोर्ट में वकालत शुरू कर दी थी। राजेन्द्र बाबू के ये बहुत घनिष्ठ मित्र थे। एक दिन राजेन्द्र बाबू से कहा—*हमें एम०एल० की परीक्षा देनी चाहिए*। राजेन्द्र बाबू बड़े मन से वकालत में लगे थे, लेकिन उन्होंने वैद्यनाथ नारायण सिंह की बात मान ली। वैद्यनाथ नारायण सिंह अक्सर राजेन्द्र बाबू से कहा करते—

> आपने एन्ट्रेंस से बी०ए० तक सब परीक्षाओं में प्रथम स्थान पाया, एम०ए० में कुछ नीचे हुए और बी० एल० में तो किसी प्रकार पास हो पाये, बस। इन अन्तिम परीक्षाओं का फल आपके विद्यार्थी जीवन का कलंक है, उसको धो देना चाहिए और एम०एल० पास करके ही आप उसे धो सकते हैं।

राजेन्द्र बाबू ने जितना परिश्रम इस परीक्षा के लिए किया, उतना परिश्रम कभी किसी परीक्षा के लिए नहीं किया था। वे अन्तिम दो-तीन महीनों में 15-16 घंटे तक पढ़ा करते थे। परीक्षा के समय जजों से कह कर कुछ दिनों की छुट्टी ले ली, अपने मुकदमों को भी मुल्तबी करा दिया। खूब तैयारी के साथ परीक्षा दी और उसका फल भी मिला। राजेन्द्र बाबू प्रथम आये थे और इनके साथी वैद्यनाथ नारायण सिंह द्वितीय आये थे। बिहार प्रान्त

के वे ही दो व्यक्ति थे, जिन्होंने सबसे पहले यह परीक्षा पास की थी। राजेन्द्र बाबू को इस परीक्षा में बहुत अधिक नम्बर मिले थे। सचमुच उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन का कलंक धो दिया था। कलकत्ता में धोखे से जिन्हें *उजबक* कहा गया था, वही वकालत की अन्तिम परीक्षा में बिहार के सिरमौर आदमी थे।

नया सूबा और एक नई दिशा

सन् 1912 में बिहार एक नया सूबा बन गया था। 1916 से पटना में हाई कोर्ट भी खुल गया। दूसरे वकीलों के साथ राजेन्द्र प्रसाद भी पटना चले आये। यहां उनकी वकालत और भी ज्यादा चल निकली। लेकिन साथ ही साथ यहां उनके जीवन की दिशा भी बदल गई। अब वे सार्वजनिक कामों में अधिक भाग लेने लगे थे। कभी-कभी तो सार्वजनिक कामों के पीछे वे पागलों की तरह जुट जाते। एक बार पुनपुन नदी में भयंकर बाढ़ आई। राजेन्द्र बाबू ने कुछ उत्साही छात्रों को लेकर एक स्वयंसेवक दल बनाया। अन्न आदि इकट्ठा करके बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ पहुंचे। तमाम गांव डूब गये थे। उनके घरों का अन्न सड़ गया था। राजेन्द्र बाबू स्वयंसेवकों के साथ सत्तू, चिउरा, भुने चने आदि बांटते। नाव पर चढ़ कर वे दूर-दूर निकल जाते और रात में लौट कर नजदीक के रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर सो जाते। इस प्रकार कई रातें उन्होंने रेलवे प्लेटफार्म पर बिताईं। पर कहते हैं न, जो दूसरों की सेवा करता है, उसे किसी न किसी रूप में सद्भावना या सहानुभूति अवश्य मिलती है। एक दिन कठिन काम करके वे रात में सो गये। थके इतने थे कि बेहोशी जैसी नींद आई। रात में उन्हें ऐसा लगा कि कोई उनके पैर दबा रहा है। उन्होंने उठ कर देखा, उनके मित्र शम्भू शरण थे। वे भी राजेन्द्र बाबू के साथ दिन भर घूमे थे, वैसे ही थके थे, पर उन्होंने अपनी थकावट की परवाह न करते हुए राजेन्द्र बाबू की थकावट दूर करना अपना कर्त्तव्य समझा।

महात्मा गांधी के साथ

महात्मा गांधी सन् 1915 में ही अफ्रीका से लौट आए थे। उस समय वे सारे देश का भ्रमण कर रहे थे। तभी 1916 में कांग्रेस का समारोह लखनऊ में हुआ। इस समारोह में गांधी जी भी आने वाले थे। राजेन्द्र बाबू भी इस समारोह में शामिल हुए। पटना से जो और लोग गए थे, उनमें एक चम्पारन के राजकुमार शुक्ल भी थे। यह एक साधारण देहाती किसान थे। थोड़ी हिन्दी को छोड़ कर और कोई भाषा नहीं जानते थे। ये उन लोगों में से थे, जिन्हें निलहे गोरों ने बहुत सताया था। सच तो यह है कि चम्पारन की सम्पूर्ण सतायी हुई प्रजा का प्रतिनिधि बनकर वे लखनऊ कांग्रेस में पहुंचे थे। बिहार के लोग निलहे गोरों के अत्याचारों की बात कांग्रेस में उठाना चाहते थे। उन्हें पता था कि गांधी दक्षिण अफ्रीका में बहुत कुछ करके हिन्दुस्तान आए हैं, इसलिए उन्हीं से मदद लेनी चाहिए। राजकुमार शुक्ल आदि गांधी जी से मिले, लेकिन राजेन्द्र बाबू उनके पास नहीं गए। बल्कि यों कहें कि तब तक राजेन्द्र बाबू के मन में गांधी जी के प्रति उतना श्रद्धा-विश्वास नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखा है—

> जब बिहार के प्रतिनिधि बाबू बृजकिशोर के साथ गांधी जी के पास गए थे, तब मैं उनके साथ नहीं था। मैं गांधी जी के बारे में बहुत जानकारी नहीं रखता था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो कुछ किया था, उसकी जानकारी भी बहुत थोड़ी थी। केवल इतना ही जानता था कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कोई बड़ा और अच्छा काम किया है। यह नहीं जानता था

कि वह देश के नामी नेताओं की तरह बड़े नेता हैं। राजकुमार शुक्ल ने न मालूम क्यों उन पर इतना विश्वास किया और उनके पास पहुंच गए।

गांधी जी उस समय तो चम्पारन नहीं गए, परन्तु उन्होंने राजकुमार शुक्ल से फिर मिलने को कहा। इसी बीच अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक कलकत्ता में हुई। राजेन्द्र बाबू भी उस बैठक में थे। वे बिलकुल गांधी जी की बगल में एक कुर्सी पर बैठे थे, पर वे उनसे एक शब्द भी नहीं बोले, और न गांधी जी ने ही कुछ पूछा। राजकुमार शुक्ल यहीं से गांधी जी को चम्पारन ले जाने वाले थे। राजेन्द्र बाबू कलकत्ते से जगन्नाथ पुरी चले गए और राजकुमार शुक्ल गांधी जी को लेकर पटना राजेन्द्र बाबू के घर पहुंचे। वहां राजेन्द्र बाबू के घर में नौकर के सिवा और कोई नहीं था। राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> नौकर ने समझा कि ये कोई देहाती मुवक्किल आए हैं। इसलिए उसने उनको किसी बाहर के कमरे में ठहरा दिया और किसी किस्म का आदर-सत्कार करने के बदले कुछ तिरस्कार का ही भाव दिखलाया। गांधी जी कुछ देर ठहरे। इतने में मजरूल हक साहब को खबर हुई, वह खुद आकर उनको अपने घर ले गए।

गांधी जी ने राजकुमार शुक्ल को वचन दिया था कि वह चम्पारन जाकर वहां के किसानों से मिलेंगे और उनका दुख उन्हीं के मुख से सुनेंगे। चम्पारन जिले का सदर मुकाम मोतिहारी है। गांधी जी मोतिहारी पहुंचे। उसी दिन एक किसान का घर निलहे अंग्रेजों द्वारा लूटा गया था। गांधी जी उस किसान के घर पहुंचे। अभी कुछ देख-सुन ही रहे थे कि कलक्टर का आदेश मिला कि वे जिला छोड़ कर चले जायें। गांधी जी ने जिला छोड़ने से इनकार कर दिया। इसके बाद गांधी जी सोच रहे थे कि उनकी गिरफ्तारी अवश्य होगी, इसीलिए उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को वहीं से तार

किया और चम्पारन आने को कहा। राजेन्द्र बाबू अपने कुछ साथियों के साथ चम्पारन पहुंच कर गांधी जी से मिले। गांधी जी ने मुस्कराते हुए राजेन्द्र बाबू से कहा—*आप आ गए? आपके घर पर तो मैं गया था।* राजेन्द्र बाबू कुछ शर्मिन्दा भी हुए और धीरे से कहा—*मैंने सब सुन लिया है।*

चम्पारन के किसान भोजपुरी के अलावा दूसरी भाषा नहीं जानते थे। यहां तक कि हिन्दी भी नहीं बोल पाते थे। गांधी जी को किसान जो भी अपनी आप बीती सुनाते थे, राजेन्द्र प्रसाद उसे गांधी जी को बता देते थे। राजेन्द्र बाबू के साथ जो लोग चम्पारन गए थे, उनमें बृजकिशोर प्रसाद, धरणीधर, रामनवमी प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, रामरक्ष ब्रह्मचारी, जनक प्रसाद, गोरख बाबू आदि थे। गांधी जी ने इन सब लोगों से काम लिया। इन्हीं से किसानों की दुख गाथा लिखवाई। राजेन्द्र प्रसाद और बृजकिशोर प्रसाद की लगन और परिश्रम देखकर गांधी जी बहुत प्रभावित हुए। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> बृजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू की जोड़ी अद्वितीय थी। उनकी लगन और उनके प्रेम ने मुझे ऐसा अपंग बना दिया कि मैं उनके बिना एक कदम भी आगे नहीं रख सकता था।

वे
दो बातें

जब राजेन्द्र बाबू चम्पारन में गांधी जी के सहयोगी बने, तब गांधी जी ने दो बातें कही थीं। पहली, मैं जेल चला जाऊं, तो चम्पारन के काम को बन्द मत करना। और दूसरी, चम्पारन के काम को मैं बहुत महत्त्व देता हूं। इसलिए, कि चम्पारन में जो सफलता मिलने वाली है, वह सारे देश में अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति दिलवाने के रूप में सामने आएगी।

ऐसा लगता है, यह कोई मंत्र था, जो राजेन्द्र बाबू के जीवन में पैठ गया। वही राजेन्द्र बाबू, जिन्होंने गांधी जी के व्यक्तित्व और कार्य के प्रति उतनी निष्ठा नहीं व्यक्त की थी, केवल कुछ ही दिनों साथ रहकर गांधी जी के लिए जेल जाने को तैयार हो गए। राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> हम लोगों ने तय कर लिया कि ज़रूरत पड़ने पर हम भी जेल जाएंगे। यह निश्चय गांधी जी को हमने सुना दिया। उन्होंने कागज-कलम लेकर सबके नाम लिख दिए। हम लोगों को कई टोलियों में उन्होंने बांट दिया। यह भी तय कर दिया कि ये टोलियां किस क्रम से जेल जाएंगी। पहली टोली के सरदार मजरुल हक साहब थे, दूसरी के बाबू बृजकिशोर, तीसरी टोली का सरदार मैं बनाया गया।

एक
बड़ा परिवर्तन

गाधी जी के साथ जैसे-जैसे राजेन्द्र बाबू को काम करने का मौका मिलता गया, वैसे-वैसे गांधी जी के प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ती गई, विश्वास बढ़ता गया तथा वे सत्य, अहिंसा की महिमा को समझते गए। फिर तो उन्हें और किसी बात की सुध-बुध रही ही नहीं। वे लिखते हैं—

> हम तो यह सोचकर गए थे कि चन्द दिनों में फुर्सत हो जाएगी। पर वहां पहुंच कर देखा, तो काम बढ़ता ही गया। उसको पूरा किए बिना वहां से हटना भी कठिन था। इसलिए दस-पांच दिनों के इरादे से गए हुए लोग प्रायः दस महीनों तक चम्पारन में रह गए। काम पूरा होने पर जब हम अपने-अपने स्थान को वापस गए, तो अपने साथ नए विचार, नई स्फूर्ति और नए कार्यक्रम लेते गए।

ये नए विचार और कार्यक्रम क्या थे, देश के लिए जो कुछ थे, वे तो थे ही, अपने खुद के विकास के लिए बहुत ही अनोखे थे। राजेन्द्र बाबू लिखते हैं—

> जब हम लोग पहले-पहल चम्पारन पहुंचे, तो हममें से बहुतों के साथ नौकर थे। हम लोगों के साथ एक रसोइया भी था। कुछ ही दिनों के अन्दर नौकरों की तादाद कम कर दी गई और उसके बाद तो एक ही नौकर रह गया। नतीजा यह हुआ कि जिन लोगों ने सारी जिन्दगी में कुएं से एक लोटा पानी भी नहीं निकाला था अथवा एक रूमाल भी नहीं साफ किया था, गांधी जी के प्रभाव से थोड़े ही दिनों के अन्दर वे नहाने, कपड़े साफ करने और बर्तन मांजने में एक-दूसरे की सहायता करने

लगे। सच तो यह है कि हम लोग सारे काम खुद करने लगे। .....जब रसोइया हटा दिया गया तो कस्तूरबा गांधी हम लोगों के लिए खाना पकाने लगीं और माता जैसे स्नेह से खिलाने लगीं। गांधी जी के आने का एक नतीजा यह भी हुआ कि हम लोगों ने तीसरे दर्जे की यात्रा को अप्रतिष्ठा की बात समझना छोड़ दिया।

गांधीजी तो युग पुरुष थे। उन्होंने देख लिया था कि राजेन्द्र प्रसाद में परिवर्तन आ रहे हैं और वे इससे प्रसन्न भी थे। एक दिन जब राजेन्द्र प्रसाद कुएं पर स्वयं पानी भर रहे थे, अपने कपड़ों में साबुन लगाकर धो रहे थे, गांधी जी ने देखा और परिहास में कहा—*आखिर मैंने पटना हाई कोर्ट के वकील से कपड़े साफ करा लिए*। फिर थोड़ा गम्भीर होकर बोले—*तुमने यहां जो काम किया, उसकी सफलता और महत्ता का यह बहुत बड़ा चिन्ह है*।

राजेन्द्र बाबू चाहते थे कि मेरी सेवा से गांधी जी को संतुष्टि तो मिले ही, साथ ही देश का अधिक से अधिक भला हो। एक दिन वे गांधी जी के साथ किसी गांव से वापस लौट रहे थे। उन्होंने गांधी जी से पूछा—

आप सारे देश में घूमते-फिरते रहते हैं। किस जगह को देश सेवा की दृष्टि से आप सबसे ऊपर स्थान देते हैं?

गांधी जी ने प्रायः सभी सूबों की बात बताई। अन्त में कहा—

देश सेवक के लिए पूना तीर्थ-स्थान है। वहां एक शहर के अन्दर इतने त्यागी लोग हैं, जितने किसी और स्थान में नहीं। वहां की संस्थाएं त्याग की दृष्टि से देश के लिए आदर्श उपस्थित करती हैं। नई संस्थाएं भी बराबर कायम होती जा रही हैं।

सन् 1918 में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बम्बई में हुआ।

राजेन्द्र बाबू वहां गए, फिर वहां से पूना भी गए। वहां की सब संस्थाओं को अच्छी तरह देखा, उनके सम्बन्ध में काफी जानकारी भी हासिल की।

गांधी जी आश्रम जीवन को बहुत महत्त्व देते थे। उसमें समय-पालन और दिनचर्या की छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। चम्पारन में गांधी जी के साथ रहते हुए राजेन्द्र बाबू के जीवन में ये बातें स्वत: ही उतरती चली गईं। चार बजे सुबह उठना, आश्रम की प्रार्थना में शामिल होना, छै बजे तक अपने सभी कामों से निवृत्त होना। राजेन्द्र बाबू ने उन दिनों की अपनी दिनचर्या का वर्णन इस प्रकार किया है—

> हम लोग सबेरे छैं बजे से बयान लिखने लगते। दिन के ग्यारह बजे तक लिखते। फिर भोजन और आराम के बाद एक या डेढ़ बजे से पाच बजे तक बयान लेते। फिर सन्ध्या का भोजन करते और गांधी जी के साथ टहलने निकल जाते। इस बीच अगर कोई ऐसा बयान आता, जिसे गांधी जी को बताना जरूरी समझा जाता, तो वह वहां बता दिया जाता या नहीं तो बयान लिख-लिख कर देते जाते और वे पढ़ते जाते। इस प्रकार बाइस अथवा पच्चीस हज़ार रैय्यतों के बयान लिखे गए। इससे सारे जिले में हलचल मच गई। रैय्यतों के दिल से डर न जाने कहां चला गया।

इसी बीच चम्पारन में दीनबन्धु एंड्रयूज भी आए। राजेन्द्र बाबू पर उनकी सादगी का बहुत असर पड़ा। इस असर को राजेन्द्र बाबू इन शब्दों में लिखते हैं—

> इस तरह का अंग्रेज, जो बेतरतीब कपड़े पहने हो, जो इक्का पर चढ़ता हो और हिन्दुस्तानियों से खुलकर मिलता हो—हमने अपने होश में नहीं देखा था। यह भी सुना था कि वह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, जिनकी पहचान वायसराय से है और जो दुनिया भर में चक्कर लगाया करते हैं। उस समय

उनसे मुलाकात हुई। उनकी सादगी और सच्चाई की जो छाप पड़ी, वह दिन-दिन गहरी होती गई। मेरे साथ तो मानो एक प्रकार का बन्धुत्व स्थापित हो गया, जो उनके मरते समय तक बना रहा।
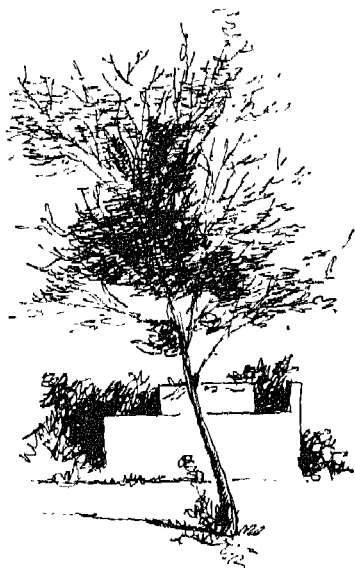
बिहार से बाहर भी

1918 के अप्रैल में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन इन्दौर में हुआ। महात्मा गांधी उसके सभापति थे। राजेन्द्र बाबू अपने साथियों के साथ वहां गए। चम्पारन में गांधी जी के साथ काम करते हुए राजेन्द्र बाबू को ऐसा लगने लगा था कि गांधी जी पर उनका विशेष अधिकार है। इसलिए अपने साथियों के साथ वे गांधी जी के साथ ही ठहरे।

सम्मेलन के बाद राजेन्द्र बाबू गांधी जी के साथ साबरमती चले गए। अभी आश्रम के मकान नहीं बने थे। बांस की चटाइयों की झोपड़ियां थीं, उन्हीं में आश्रमवासी रहा करते थे। महात्मा गांधी वहां से खेड़ा के गांव में चले गए। सरदार बल्लभ भाई पटेल गांधी जी के नेतृत्व में खेड़ा का सत्याग्रह चला रहे थे। वहां राजेन्द्र बाबू महात्मा जी के साथ दो-तीन दिनों तक रहे। गांवों में जाने का सुअवसर मिला। गुजरात के लोगों से घनिष्ठता हुई और सबसे बड़ी बात, गुजरात में महात्मा जी की कार्य-पद्धति का अनुभव हुआ।

महात्मा जी पैदल ही सफर करते थे, वैसा ही राजेन्द्र बाबू को भी करना पड़ा। महात्मा जी जूते नहीं पहनते थे। अप्रैल के दिन थे। लगभग दो पहर दिन चढ़ चुका था। सब लोगों को रेतीले रास्ते से जाना था। बालू बहुत गरम हो गई थी। लेकिन महात्मा गांधी ने परवाह नहीं की। जहां जाना था, चले ही गए। शायद ऐसे कठिन संघर्ष और निष्ठा का फल था कि खेड़ा का सत्याग्रह सफल हुआ।

केवल थोड़े ही दिनों गुजरात के खेड़ा सत्याग्रह में राजेन्द्र

बाबू शामिल रहे। इतने ही समय में उन्होंने अपनी कर्मठता और निष्ठा से बल्लभ भाई पटेल को प्रभावित किया। बल्लभ भाई पटेल ने राजेन्द्र बाबू के विषय में लिखा है—

> सन् 1918 के खेड़ा सत्याग्रह की लड़ाई के दिनों में राजेन्द्र बाबू से पहली बार मिलना हुआ था। उसी समय से उनके प्रति मेरे दिल में जो आकर्षण उत्पन्न हुआ, हम दोनों के बीच प्रेम की जो गांठ बंधी, वह अब तक बंधी हुई है। राजेन्द्र बाबू को देखते ही उनकी सरलता और नम्रता की छाप हमारे दिल पर पड़ती है।

एक और मजेदार घटना

इन्दौर सम्मेलन के बाद दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें अपने साथियों के साथ राजेन्द्र बाबू भी पहुंचे। स्टेशन पर वालंटियर मिले, पर उनमें से कोई न बता सका कि बिहार के प्रतिनिधियों के ठहरने का स्थान कहां है। किसी ने कहा—आप पटौदी हाउस चले जाइए। ये लोग पटौदी हाउस पहुंच गये। अभी पूरी तरह सबेरा नहीं हुआ था। कुछ रात बाकी थी। सर्दी भी थी। एक छोटे कमरे में दस-पन्द्रह आदमी बैठे रहे। जब सबेरा हुआ और इधर-उधर पूछताछ की, तो कोई कुछ न बता सका। राजेन्द्र बाबू ने सोचा—बस, यहीं ठहरना चाहिए। दो मंजिले पर एक अच्छा कमरा था, उसी पर सब लोगों ने कब्जा कर लिया। कुछ देर के बाद स्वागत-समिति के कोई साहब आए। उन्होंने हुक्म दिया कि आप लोग मकान को खाली कर दीजिए। राजेन्द्र बाबू के साथियों ने पूछा—*आखिर हम लोग कहां जायें?* उन्होंने जवाब दिया—*कहीं भी जाइये, यह मकान बंगाल के डेलीगेटों के लिए है और यह ऊपर का कमरा श्रीयुत् बी० चक्रवर्ती और सी०आर० दास के लिए है।* राजेन्द्र बाबू और उनके साथी कहते रहे कि हमारे लिए कोई दूसरी जगह ठीक कर दीजिए, लेकिन उन लोगों ने कोई उत्तरदायित्व न लेना चाहा। तब राजेन्द्र प्रसाद और उनके साथियों ने निश्चय किया कि जब तक दूसरी जगह ठीक नहीं होती, हम यहां से हटेंगे नहीं। कुछ देर बाद फिर हुक्म मिला कि यहां से चले जाइए। इन लोगों ने फिर साफ इनकार कर दिया। गुस्से में आकर स्वागत-समिति के सदस्य ने कहा—*अगर आप मकान नहीं खाली करते तो हम स्वागत-समिति के चौके में आपके भोजन का प्रबन्ध नहीं*

करेंगे। लेकिन यह धमकी राजेन्द्र बाबू के साथियों को बहुत पसन्द आई। स्वागत-समिति के चौके में दो रुपया रोजाना देना पड़ता था, जबकि इन लोगों ने कुछ हांड़ियां मंगा लीं और ईंटों के चूल्हे बना कर खिचड़ी पका ली। इसमें छै आने से अधिक न पड़ा। इस पर भी पुनः जोर लगाया गया। लेकिन जब एक बार चूल्हा जल चुका था, तो कौन हटाता।

श्री सी०आर० दास राजेन्द्र बाबू को वकालत के जमाने से ही जानते थे। कुछ मुकदमों में इन्होंने साथ-साथ काम किया था। जब अधिवेशन में श्री दास से भेंट हुई, तो उन्होंने हंसते हुए कहा—*सुना है कि मेरे लिए जो कमरा था, उसे तुम लोगों ने जबरदस्ती अपने कब्जे में कर लिया है*। राजेन्द्र बाबू को कुछ शर्म तो लगी, पर उन्होंने सारी बातें सच-सच बता दीं। यह भी कहा कि अगर आप कहें, तो मकान अभी खाली कर दें। श्री सी०आर० दास हंसते हुए बोले—*जब तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं थी, तो तुम करते भी क्या? मेरी चिन्ता मत करो, मैं आराम से होटल में ठहरा हूं*।

राजेन्द्र बाबू अपने साथियों के साथ फिर उसी मकान में ठहरे रहे। यदि वे अकेले होते, तो सम्भवतः इतना हठ न करते। पर उनके साथ पटना के और प्रतिनिधि भी थे, जिनके सुख-दुख का ख्याल उनको रखना था। इसीलिए शायद वे अन्त तक अड़े भी रहे। फिर स्वागत-समिति के आयोजकों ने भी तो अपना कर्त्तव्य नहीं निभाया था। उन्हें जिस विनम्रता और सद्भाव का व्यवहार करना चाहिए था, वैसा उन्होंने नहीं किया। इस प्रकार राजेन्द्र बाबू ने भी एक गलत ज़िद को नहीं माना। पर उन्होंने इस घटना को मनोरंजक घटना बताया है।

मित्र जो अचानक बिछुड़ गया

सन् 1918 में दुर्गा पूजा की छुट्टियों के दिन थे। राजेन्द्र बाबू रायबहादुर हरिहर प्रसाद सिह के एक मुकदमे के सिलसिले में प्रयाग गए हुए थे। उन्हीं दिनों राजेन्द्र बाबू के मित्र वैद्यनाथ नारायण सिह प्रयाग में थे। वे दारागंज में एक किराये का मकान लेकर अपने परिवार के साथ रह रहे थे। राजेन्द्र बाबू अक्सर सुबह-शाम टहलने के समय उनसे मिला करते थे।

एक दिन अचानक दोपहर के समय वैद्यनाथ नारायण सिह राजेन्द्र बाबू के यहां आ गए। इधर-उधर बेमतलब की बातें करने लगे। उनकी बकझक में राजेन्द्र बाबू शाम तक मुकदमे का कुछ काम न कर सके। शाम को भी जब वे चलने लगे, तो कह गए—*कल दोपहर मैं फिर आऊंगा*। लेकिन दूसरे दिन दोपहर के पहले ही पहुंच गए। फिर बहुत सी बेतुकी बातें करते रहे। राजेन्द्र बाबू को सन्देह हुआ कि इनका दिमाग फिर गया है। उस दिन राजेन्द्र बाबू उनके घर तक गए। वहां पूछने पर मालूम हुआ कि वे कई दिनों से रात में सोते नहीं और इसी प्रकार दिन-रात कुछ न कुछ बोलते रहते हैं। राजेन्द्र बाबू का संदेह और बढ़ गया। तीसरे दिन तो वे एकदम पागल से हो गए। राजेन्द्र बाबू ने तार देकर उनके भाई को बुलाया, खुद उनके साथ रहने लगे, पर दिनों-दिन उनकी हालत बिगड़ती गई।

एक दिन तो उन्होंने हद ही कर दी। बक्स खोलकर वकालत वाला गाउन निकाला और उसे टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाला। यूनीवर्सिटी की किसी परीक्षा में उन्हें सोने का पदक मिला था, उसे भी निकाल कर फेंक दिया। अपनी छोटी बच्ची को एक दिन मार डालने पर उतारू हो गए। राजेन्द्र बाबू बहुत घबड़ाए।

उनके भाई से सलाह की, तो निश्चय हुआ कि इनको पटना ले चलना चाहिए। यह भी तय हुआ कि राजेन्द्र बाबू इन्हें लेकर पटना जाएंगे और भाई परिवार लेकर दूसरे दिन आएंगे।

जब राजेन्द्र बाबू पटना के लिए रवाना हुए, तब वैद्यनाथ नारायण सिंह बिल्कुल स्वस्थ से मालूम पड़ते थे। कपड़े ठीक से पहने हुए थे। होश की बातें करते हुए रेल में सवार हुए। रास्ते में राजेन्द्र बाबू से कहा—*तुम अपने घर जाना चाहते हो तो चले जाओ। अब मेरी तबियत बिल्कुल ठीक हो गई है, कोई चिन्ता की बात नहीं*।

राजेन्द्र बाबू को लगा कि सचमुच वे अच्छे हो गए हैं। उन्हें क्या पता कि वह पागलपन के बीच की चेतना थी, जो थोड़े समय के लिए लौट आई थी। राजेन्द्र बाबू काशी स्टेशन पर उतर गए। उन्हें पटना की गाड़ी में सवार कराया और खुद छपरा की गाड़ी से जीरादेई चले गए। लेकिन वैद्यनाथ नारायण सिंह जब दूसरे दिन पटना पहुंचे तो उनकी हालत बहुत खराब हो गई। स्टेशन के कर्मचारियों ने उन्हें पहचाना। अकेला देखकर कुछ मित्रों को खबर दी। वे लोग आए और उन्हें किसी तरह घर ले गए।

दूसरे दिन जब राजेन्द्र बाबू पटना आए, तो अपने मित्र को बुरी दशा में पाया। उन्हें बहुत अफसोस हुआ कि मैंने उन्हें अकेला क्यों छोड़ा? जब बाबू वैद्यनाथ नारायण सिंह ने राजेन्द्र बाबू को देखा, तो बड़ी जोर से हंसे, बोले—*आप अपने को बड़ा होशियार समझते हैं? मुझे पहरे में रखने के लिए मेरे साथ आए थे? कैसे चकमा देकर तुम्हें बेवकूफ बनाया*। इतना कहकर वे फिर हंसने लगे और वही बेतुकी बकझक आरम्भ कर दी।

पटना में राजेन्द्र बाबू बराबर उनकी देखरेख करते रहे। वे कभी अच्छे हो जाते, हाई कोर्ट जाने लगते। कभी *पटना लॉ वीकली* निकालने लगते। इस पत्रिका को राजेन्द्र बाबू और वे, दोनों मिलकर निकालते थे। पर उनकी बीमारी ज्यों की त्यों बनी रही, और अचानक एक दिन उनकी मृत्यु हो गई। राजेन्द्र बाबू

को बड़ा आघात पहुंचा। वे उनके अनन्य मित्र थे। राजेन्द्र बाबू पर उन्होंने बहुत सारे उपकार किए थे। राजेन्द्र बाबू को जीवन पर्यन्त इस बात का पश्चाताप रहा कि वे अपने प्रिय मित्र के लिए कुछ भी नहीं कर पाए।

दूसरे प्रकार का वकील

चम्पारन में गांधी जी ने एक बार राजेन्द्र बाबू से कहा था कि अगर तुम लोग चम्पारन में सच्चाई के साथ काम करोगे, तो एक प्रकार की पूंजी कमा लोगे, जिससे आगे चलकर बहुत लाभ उठा सकोगे। राजेन्द्र बाबू ने सचमुच पूंजी कमा ली थी। वह पूंजी थी—स्वावलम्बन की पूंजी, सच्चाई, अहिंसा और देश सेवा की पूंजी। अपने काम के प्रति तो वह पहले भी ईमानदार थे, लेकिन चम्पारन के बाद उनके वकालत के तरीके में भी परिवर्तन आया। अब वे मुकदमे को एक सच्चाई मान कर लेते थे। जिस मुकदमे में न्यायसंगत बात न होती, मुवक्किल को साफ मना कर देते। उनकी सच्चाई और ईमानदारी का असर जजों पर भी हुआ। पटना हाई कोर्ट में उस समय एक अंग्रेज जज था। वह कभी-कभी राजेन्द्र बाबू से मज़ाक किया करता था। वह कहता—*अगर तुम्हारा प्रतिपक्षी वकील कमजोर है, तो उसे भी कोई दलील बता दो*। राजेन्द्र बाबू सचमुच उसे बता देते, लेकिन उस दलील को काट कर जो कुछ कहना होता, उसके लिए भी तैयार रहते। उन्होंने ऐसी कई अपीलों के कागज और पैसे लौटा दिए, जिनमें जीतने की गुंजाइश नहीं थी। मुवक्किलों ने दूसरे से अपील दायर करवाई और वे हार गए। मुकदमेबाजी एक प्रकार का जुआ है। लेकिन अब गांधी जी के विचारों में सम्मिलित होने के बाद राजेन्द्र बाबू यह जुआ भी सच्चाई के साथ खेलना चाहते थे।

महात्मा गांधी
की
पीड़ा के साक्षी

वे वकालत तो कर ही रहे थे, पर जहां कहीं कोई अधिवेशन होता, गांधी जी के आने की सम्भावना होती, वे तुरन्त वहां जाते। इसी बीच बम्बई कांग्रेस का एक अधिवेशन हुआ। इसमें राजेन्द्र बाबू गए। गांधी जी बीमारी के कारण इसमें न आ सके। राजेन्द्र बाबू अधिवेशन के बाद गांधी जी से मिलने अहमदाबाद पहुंचे। उस समय गांधी जी सेठ अम्बालाल साराभाई के महल में ठहरे हुए थे। गांधी जी की तबियत तो खराब ही थी, डॉक्टर उन्हें देखते भी थे, पर गांधी जी कोई दवा नहीं खाते थे।

एक दिन राजेन्द्र बाबू कहीं घूमने गये हुए थे। इसी बीच गांधी जी का बुखार बहुत बढ़ गया। गांधी जी ने जिद की कि मैं इसी समय साबरमती आश्रम जाऊंगा। लोगों ने बहुत मना किया, पर गांधी जी नहीं माने।

राजेन्द्र बाबू जब लौटकर आये तो सभी लोग आश्रम जा चुके थे। राजेन्द्र बाबू भी शाम को साबरमती आश्रम पहुंच गये।

दूसरे दिन सबेरे राजेन्द्र बाबू गांधी जी के पास बैठे हुए थे। वहां उस समय जो घटना घटी, गांधी जी अपने ही मन की पीड़ा से जिस प्रकार फूट-फूट कर रोये, और उन्होंने उस समय जो कुछ कहा, वह सब राजेन्द्र बाबू के जीवन की एक पूंजी है। राजेन्द्र बाबू ने बड़े मार्मिक शब्दों में इसका वर्णन अपनी आत्मकथा में किया है—

> गांधी जी का ज्वर कुछ कम हो गया था। पर वह बहुत कमजोर थे। एक छोटे से कमरे में चारपाई पर पड़े हुए थे। मैं

नीचे चटाई पर बैठा था। वह श्री छगनलाल गांधी को बुलवाकर उनसे बात करने लगे। उन्होंने इतने आवेश में बातें की कि उसका असर पड़े बिना रह नहीं सकता था। यद्यपि मैं गुजराती कम समझ पाता था, फिर भी मैंने सारांश तो पा ही लिया। उन्होंने कहा—कल जब ज्वर का बहुत वेग था मैंने जिद करके यहां चले आने को कहा। मैं समझता था कि यहां पहुंचने पर ही ज्वर का वेग कम होगा। यह ज्वर तो शरीर में था, पर वहां उस बड़े महल में पड़े-पड़े मेरे हृदय के भीतर बड़ी ज्वाला जल रही थी। मैं सोच रहा था—गांधी! तुझे इतने बड़े महल से क्या काम? तू यहां क्यों ठहरा हुआ है? तेरी जगह तो गरीबों के झोपड़ों में है—आश्रम में है। यहां से तुरन्त चला जा। तू जब तक ऐसा नहीं करता, तुझे चैन नहीं मिल सकता। इसी कारण मैंने इतनी जिद की, जो तुममें से कुछ को बुरी भी लगी होगी। वहां से यहां आने पर भी मैं रात को सोया नहीं हूं, बराबर सोचता ही रहा हूं। मैं अपने से पूछता रहा हूं कि क्या तेरी जिन्दगी इसी तरह बिना कुछ सफलता पाए ही बीत जाएगी? जब से दक्षिण अफ्रीका से हिन्दोस्तान आया, एक पर एक काम मैंने हाथ में लिया, पर किसी को भी पूरा न कर सका, सबको अधूरा ही छोड़ता गया। मिल मजदूरों की हड़ताल का काम हुआ। हड़ताल इस माने में तो सफलतापूर्वक समाप्त हुई कि उनकी मांगें मंजूर हो गईं, पर मजदूरों में अभी बहुत सी ऐसी त्रुटियां हैं, जिनको दूर करना चाहिए। मेरी इच्छा थी कि उनके बीच काम करके उन त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करूंगा। पर वह न कर सका, चम्पारन चला गया। चम्पारन में भी नीलवरों का प्रश्न तो समाप्त हुआ, पर वहां के किसानों के बीच बहुत काम करने की ज़रूरत है। इसीलिए वहां पर कुछ पाठशालाएं खोली गईं। मेरी इच्छा थी कि मैं इस प्रकार के काम में योगदान करता रहूंगा और उस काम को खूब जोरों से

चलाऊंगा। इस काम के लिए सच्ची लगन वाले त्यागी लोग भी मिले थे और दूसरे भी मिलने वाले थे। पर उसको भी अधूरा ही छोड़ मुझे खेड़ा के सत्याग्रह में लग जाना पड़ा। खेड़ा में भी जनता में काम करने की ज़रूरत है, पर वह भी पूरा न हो सका। इतने में मैं बीमार पड़ गया। मालूम नहीं, इस बीमारी से बचकर फिर खड़ा होऊंगा या नहीं। मगर हो भी सकूंगा, तो ठीक नहीं कब तक। .....इस आश्रम को ही मैंने बहुत आशा और मन्सूबे लेकर स्थापित किया था, पर इसको भी मैं अब तक समय नहीं दे सका। .....अब मेरी यह हालत है, न मालूम ईश्वर को क्या मंजूर है।

इस प्रकार बातें करते-करते गांधी जी फूट-फूट कर रोने लगे। कुछ देर तक रोते रहे। हम ही दोनों वहां थे। उनको कोई चुप करावे तो कैसे करावे? हम जानते थे कि उनके हृदय की ज्वाला अब आंसुओं के रूप में निकल रही है। कुछ देर के बाद वे खुद चुप हुए। उन्होंने कहा—*यह ज्वाला बहुत जला रही थी। रात भर सोया नहीं*। कुछ आंसू बह जाने के बाद वह शान्त हुए। इसके बाद कुछ देर तक चुप रहे। मैं भी चुप बैठा रहा और सोचता रहा कि ईश्वर ने हमारे लिए बड़ा सौभाग्य प्रदान किया कि ऐसे महापुरुष का सम्पर्क मुझे मिला।
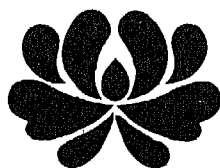
असहयोग आन्दोलन की राह पर

गांधी जी के नेतृत्व में रोलेट बिल के खिलाफ आन्दोलन हुआ। उसी बीच गांधी जी ने *यंग इंडिया* का प्रकाशन शुरू किया। इस अखबार के माध्यम से गांधी जी ने अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह का बिगुल बजाया। राजेन्द्र बाबू गांधी जी के निर्देशानुसार ही उनके सारे आन्दोलनों में सहयोग देते रहे। गांधी जी राजेन्द्र बाबू पर बहुत विश्वास करते थे। इन्हीं दिनों एक बार महादेव देसाई के साथ वे अहमदाबाद से दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। महादेव भाई ने तुरन्त राजेन्द्र बाबू को तार दिया और अहमदाबाद आने को कहा। राजेन्द्र बाबू अहमदाबाद पहुंचे। तब तक गांधी जी छोड़ दिए गए थे। राजेन्द्र बाबू की बात गांधी जी से हुई। महादेव देसाई के द्वारा उन्हें यह भी मालूम हुआ कि उन्हें इसलिए बुलाया गया था कि गांधी जी अगर जेल में रहते हैं, तो सत्याग्रह के संचालन का भार राजेन्द्र प्रसाद को दिया जाय।

गांधी जी ने सत्याग्रह को एक व्रत के रूप में लिया था। उन्होंने सत्याग्रहियों के लिए एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार कराया था। इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने का अर्थ था—अहिंसा का पालन करते हुए, सरकार के ऐसे कानून को न मानना, जिसे तोड़ने की आज्ञा एक मनोनीत कमेटी दे। यह कमेटी गांधी जी ने स्वयं बनाई थी और इसमें राजेन्द्र बाबू को भी रखा था।

1920 में रौलेट एक्ट के विरोध में 6 से 13 अप्रैल तक देशव्यापी आंदोलन शुरू हुआ। इसमें सभा, जुलूस, हड़ताल

आदि होने लगे। इस काम में बिहार का नेतृत्व राजेन्द्र बाबू ने किया।

गांधी जी ने अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम अप्रैल 1920 में बनाया था। अप्रैल में ही मौलाना शौकत अली पटन आये। राजेन्द्र बाबू के सभापतित्व में एक बड़ी सभा हुई। इस सभा में पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजन दास भी मौजूद थे। उस सभा में मौलाना शौकत अली ने असहयोग कार्यक्रम के बारे में बताया और लोगों से पूछा—आप लोग इसके लिए कहां तक तैयार हैं। उन्होंने राजेन्द्र बाबू से अपने विचार व्यक्त करने को कहा। राजेन्द्र बाबू जानते थे कि असहयोग में भाग लेने पर वकालत छोड़नी पड़ेगी। लेकिन देश के लिए वे सारे त्याग करने को तैयार थे। उन्होंने सभा में घोषणा की—देश जब भी असहयोग करने का निश्चय करेगा, मैं कभी पीछे नहीं रहूंगा।

इसी के बाद अगस्त में बिहार कांग्रेस का प्रान्तीय सम्मेलन भागलपुर में हुआ। इस सम्मेलन के सभापति राजेन्द्र बाबू ही चुने गये। इसी समय गांधी जी का तार आया कि सम्मेलन में असहयोग का समर्थन होना चाहिए। राजेन्द्र बाबू ने प्रस्ताव रखा और वह मान लिया गया। उस समय तक बिहार और गुजरात दो ही ऐसे प्रान्त थे, जिनके प्रान्तीय सम्मेलनों ने असहयोग का समर्थन किया था।

कुछ दिन बाद बम्बई में अखिल भारतीय कमेटी की बैठक हुई। इसमें राजेन्द्र बाबू भी गये। वहां असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव पास हो गया। असहयोग का मतलब था—सरकारी भवनों को छोड़कर गांधी जी के सत्य, अहिंसा को अंगीकार करना और भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराना। देश के बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर, डॉक्टर, प्राध्यापक, विद्यार्थी अपना-अपना पेशा छोड़ कर असहयोग में शामिल होने लगे। राजेन्द्र बाबू ने भी वकालत छोड़ दी। वे तो पहले ही गांधी जी के रास्ते

को अपना कर फकीरी धारण कर चुके थे। उस समय तक वे पटना विश्वविद्यालय की सिनेट के सदस्य भी थे। उन्होंने इस सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया।

सदाकत
आश्रम

असहयोग से प्रेरित होकर विद्यार्थी सरकारी स्कूल और कॉलेज छोड़ रहे थे। राजेन्द्र बाबू और उनके सहयोगियों ने सोचा कि एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना करनी चाहिए। पटना-गया रोड पर किराये का एक मकान लेकर विद्यालय की स्थापना की गई। राजेन्द्र बाबू इसके प्रिंसिपल हुए।

इसी बीच पटना इंजीनियरिंग स्कूल के विद्यार्थियों का वहां के प्रिंसिपल से झगड़ा हो गया। विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी। सभी लड़के टोली बनाकर मजरुल हक साहब के पास गये। उनसे कहा कि हम लोगों ने स्कूल छोड़ दिया है। हमें जगह दीजिए। मजरुल हक साहब बड़े भावुक आदमी थे। वे तुरन्त उठे। उन लड़कों को लेकर पटना-दानापुर सड़क पर एक बगीचे में चले गये। वहां उनके परिचित का एक छोटा सा मकान था, उसी में रहने लगे। धीरे-धीरे वहां ताड़ की चटाइयों के कुछ झोपड़े भी बन गये। लड़के भी बड़े उत्साही थे। कष्ट का ख्याल न करके आनन्द से रहने लगे। कुछ दिनों में वही बीहड़ स्थान, जहां से रात में गुजरना खतरनाक समझा जाता था, गुलजार हो गया। उसी स्थान का नाम उन्होंने *सदाकत आश्रम* रखा।

कुछ दिनों बाद नेशनल कॉलेज भी यहीं आ गया और यहीं *बिहार विद्यापीठ* की स्थापना हुई। 3 फरवरी, 1921 को गांधी जी ने बिहार विद्यापीठ का उद्घाटन किया। मजरुल हक, विद्यापीठ के कुलपति और बृजकिशोर प्रसाद उपकुलपति हुए। राजेन्द्र बाबू नेशनल कॉलेज के प्रिंसिपल बने रहे। बिहार के दौरे पर गांधी जी को 60 हज़ार रुपयों की थैली भेंट की गई थी। वह थैली इन विद्यालयों के खर्च के लिए गांधी जी ने राजेन्द्र बाबू को दे दी थी।

मजरुल हक
और
राजेन्द्र बाबू

राजेन्द्र बाबू का मन और उनका जीवन एक दर्पण की तरह था। कोई अच्छा विचार या व्यक्ति मिला, उन्होंने हमेशा-हमेशा के लिए अपने भीतर रख लिया। श्री मजरुल हक साहब भी अच्छे गुणों वाले एक नेक इंसान थे। राजेन्द्र बाबू ने देवता की तरह उन्हें माना। श्री हक साहब के सम्बन्ध में उन्होंने एक घटना अपनी आत्मकथा में लिखी है, जिससे श्री हक साहब का चरित्र तो स्पष्ट होता ही है, साथ ही राजेन्द्र बाबू का अच्छे आदमियों के प्रति सद्भाव भी स्पष्ट होता है। घटना इस प्रकार है—

हक साहब के साथ एक बहुत गरीब घर का मुसलमान लड़का रहा करता था। उन्होंने देखा कि लड़का पढ़ने में तेज है। उनके दिल पर इसका भी असर पड़ा था कि मुसलमान होकर भी उसने हिन्दी और संस्कृत पढ़ी थी। वह कॉलेज के फर्स्ट या सेकेंड इयर में पढ़ता था। नाम था मुहम्मद खलील। हक साहब उसे बहुत मानते थे। असहयोग का आरम्भ होने पर उसने भी कॉलेज छोड़ दिया। हक साहब के साथ ही सदाकत आश्रम में रहने लगा।

एक-डेढ़ साल के बाद मैंने सुना कि हक साहब ने उसको आश्रम से निकाल दिया। मुहम्मद खलील ने आकर मुझसे कहा कि वह गुस्सा हो गये हैं, आप सिफारिश करके उन्हें शान्त कर दीजिए। हक साहब की मेहरबानी मेरे ऊपर बराबर रहा करती थी। वह दिल से मुझे प्यार किया करते थे। इसलिए मैंने मुहम्मद खलील के बारे में उनसे कहा। उस समय तक मुहम्मद खलील

सारे बिहार में विख्यात हो गये थे। उन्होंने असहयोग का आरम्भ होते ही एक राष्ट्रीय भजन बनाया था, जो उन दिनों बहुत प्रचलित हो गया था। वह वास्तव में बहुत सुन्दर, हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी गान था। उसका टेक था—*भारत जननी, तेरी जय, तेरी जय हो*। उन दिनों शायद ही ऐसी कोई सभा होती, जिसमें वह गीत बड़े उत्साह से न गाया जाता।

जब मैंने हक साहब से कहा कि मुहम्मद खलील की कोई गलती हो तो माफ कीजिए, तो उन्होंने बहुत ही दुख के साथ मुझसे कहा—

> मैं तुम्हारी बात कभी नहीं टालता। पर इस समय मजबूर हूं। तुम नहीं जानते कि खलील ने कितना बुरा काम किया है। मैंने जिस चीज को अपने सारे जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया है, जिसके लिए आज तक सब कुछ करता आया हूं और आज फकीर बन गया हूं, उस पर उसने ठेस लगाई है। मैंने अबतक की सारी जिन्दगी में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काम किया है। उसी में आज भी लगा हुआ हूं। आश्रम में रह कर उसने हिन्दू लड़कों के साथ ऐसा बर्ताव किया है, जिससे वे लड़के, जो मुझ पर विश्वास करके प्रेमवश मेरे पास आये हैं, हिन्दू-मुस्लिम भेद भाव समझने लगे। इसने मेरे सारे जीवन के बने बनाये काम को बिगाड़ने का प्रयत्न किया है। इसने इस बात की कोशिश की है कि हिन्दू लड़कों को मुसलमान बनाया जाये। मैं सब कुछ माफ कर सकता हूं, पर इस तरह इस्लाम के नाम पर विश्वासघात करना बरदाश्त नहीं कर सकता। अब मैं जान गया हूं कि हिन्दी और संस्कृत भी इसने ढोंग के लिए पढ़ी है। एक दिन यह हिन्दू-मुस्लिम फिसाद भी करा देगा। मैं उसे आश्रम में हरगिज न रहने दूंगा।

यह घटना बताती है कि उस समय राजेन्द्र बाबू के साथ जो लोग थे, वे जाति, धर्म और सम्प्रदाय की भावनाओं से बहुत ऊपर उठे हुए थे। उनके सामने बस एक ही लक्ष्य था—देश, स्वतंत्रता, एकता और जनसेवा।

पूरे बिहार का भ्रमण
और
भाषण

असहयोग के समय में राजेन्द्र बाबू ने पूरे बिहार का चक्कर लगाया। उन्हें अनेक सभाओं में भाषण करने पड़े। जहां के लोग भोजपुरी बोलते थे, वहां उन्होंने भोजपुरी में भाषण दिए। दूसरी जगहों में शुद्ध हिन्दी में बोले। सभाएं भी छोटी नहीं होती थीं। पांच-दस हजार आदमियों का जमाव हो जाना साधारण बात थी। राजेन्द्र बाबू ने इन सभाओं के विषय में लिखा है—

> दस हजार लोगों की सभा में मैं आसानी से सब लोगों तक अपनी आवाज पहुंचा सकता था। उससे अधिक संख्या होने पर परिश्रम करना पड़ता था। .....बहुत अधिक परिश्रम पड़ता, तब पेट में दर्द हो जाता था। मुझे यह भी याद है कि बीस-पचीस हज़ार के मजमे में भी मैंने भाषण किए थे। एक सभा छपरा जिले के हथुआ में भी हुई थी। न मालूम कैसे खबर उड़ गई कि महात्मा गांधी आने वाले हैं। इसलिये वहां पचास हजार का जमाव हो गया। हज़ार कोशिश करने पर भी सभा नहीं जम सकी।

उस समय लाउड स्पीकर आदि की सुविधा तो थी नहीं। बस, ऊंचे गले से बोल कर सारी बातें समझानी पड़तीं। यह केवल भीतर की लगन और उत्साह का ही फल था कि राजेन्द्र बाबू ने इतने बड़े प्रान्त में स्वतंत्रता का विचार जन-जन तक पहुंचाया।

असहयोग आन्दोलन और राष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार-प्रसार करने के लिए राजेन्द्र प्रसाद ने अपने साथियों के साथ

अखबारों का प्रकाशन भी शुरू किया—हिन्दी में *देश* और अंग्रेजी में *सर्चलाइट*। *देश* के सम्पादक स्वयं राजेन्द्र बाबू थे और *सर्चलाइट* के श्री सिंह और हसन इमाम थे।

राजेन्द्र बाबू तिलक स्वराज्य फंड के लिए पैसा जमा करने गांधी जी के साथ उड़ीसा भी गए। उस समय वहां अकाल पड़ा हुआ था। उड़ीसा भ्रमण का जिक्र करते हुए राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> उड़ीसा की ही किसी सभा में महात्मा जी ने बहुत मार्के का भाषण दिया था। उसका असर आज तक मेरे दिल पर है। सभा में किसी ने महात्मा जी से प्रश्न किया कि आप अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध क्यों हैं? अंग्रेजी शिक्षा ने ही तो राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक तथा आपको पैदा किया है। महात्मा जी ने उत्तर में कहा कि मैं तो कुछ नहीं हूं, पर लोकमान्य तिलक जो भी हुए हैं, उससे कहीं अधिक बड़े होते, यदि उनको अंग्रेजी द्वारा शिक्षा का बोझ ढोना न पड़ा होता। राजा राममोहन राय और लोकमान्य तिलक, श्री शंकराचार्य, गुरु नानक, गुरु गोविन्द सिंह तथा तुलसी और कबीर के मुकाबले में क्या हैं। आज तो सफर के और प्रचार के इतने साधन मौजूद हैं, उन लोगों के समय में कोई साधन नहीं थे, तो भी उन्होंने विचार की दुनिया में इतनी बड़ी क्रांति मचा दी।

इस सम्बन्ध में राजेन्द्र बाबू ने अपना भी विचार लिखा—

> अंग्रेजी जानना बुरा नहीं है। उसे हममें से बहुतों को जानना होगा। हम उसे सीखेंगे भी। पर वह शिक्षा का माध्यम और साधन नहीं रह सकती।

कभी-कभी ऐसा भी

तिलक स्वराज फंड के लिए राजेन्द्र बाबू ने बहुत दौरा किया। उन्होंने बिहार की तरफ से लगभग 7-8 लाख रुपये जमा किए। बीहड़ और दुरूह स्थानों में घूमते हुए कभी-कभी उनको कठिन परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ा। कभी वे भूखे-प्यासे भी रहे, कभी बीच जंगल में भी फंसे। इसी तरह एक घटना का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—मैं रांची जिले में स्वराज कोष का पैसा जमा करने के लिए गया। वहां के कार्यकर्ताओं ने मेरे लिए दो दिनों का कार्यक्रम बना दिया। पहले दिन रांची से मोटर पर चलकर दस बजे बुन्डू का काम समाप्त करना था। दोपहर बाद खूंटी जाना था। रात तक फिर रांची वापस आना था। दूसरे दिन सबेरे लोहरदग्गा जाना था। वहां से दोपहर तक वापस आकर तीसरे पहर की गाड़ी से पटना के लिए रवाना होना था।

हम लोग रांची से सबेरे ही नहा-धोकर तैयार हो गए। टैक्सी के आने में कुछ देर हो गई। हम सात आदमी उस पर सवार होकर रवाना हुए। यह सोचा गया कि दोपहर को रांची में ही आकर भोजन करना होगा, इसलिए हमने साथ में कुछ भी न लिया। ·····कुछ दूर जाने पर एक जंगल में मोटर में कुछ टूट गया। ड्राइवर ने मरम्मत शुरू की और कहा कि बस, दस-पांच मिनट में तैयार कर लूंगा। मरम्मत में देर होने लगी। ज्यों-ज्यों हम घबड़ाते, ड्राइवर हमें आश्वासन दे देता। दो-तीन घंटों के बाद उसने कहा कि लोहार की जरूरत होगी। तलाश करने पर एक गांव मिला। वहां लोहार के घर जाकर वह पुर्जा दुरुस्त कराने लगा। जंगल में कुछ भी खाने-पीने का सामान नज़र नहीं आता था। इमली के वृक्ष थे, उनमें इमली के गुच्छे लटक रहे थे।

हम लोग उन्हें तोड़-तोड़ कर जबान और दांत खट्टे करते रहे। दोपहर के बाद प्यास ने जोर किया। गांव तलाश करके लोटा-बालटी मांगी गई। बहुत दूर से पानी लाकर प्यास बुझाई। .....अन्त में मोटर की मरम्मत हो गई। हम लोग 5-6 बजे शाम तक बुन्डू पहुंचे। जो लोग दूर गांव से आए थे, वे तो चले गए थे, पर खास बुन्डू के लोगों को हमारे पहुंचने की खबर बात की बात में पहुंचा दी गई। सभा जुट गई। वहां भी भाषण हुआ, रुपये जमा किए गए। जहां तक मुझे याद है, वहां सात-आठ सौ रुपये के लगभग इकट्ठा हुए। .....11-12 बजे रात में उसी टूटी मोटर पर हम सात आदमी वापस हुए। बीच में थोड़ी ही दूर पर एक घाट है, जहां कुछ ऊंची चढ़ाई है। उस चढ़ाई पर चढ़ते समय मोटर फिर टूटी। जहां मोटर टूटी, वहां से प्रायः दो-ढाई सौ गज और ऊपर चढ़ना था, उसके बाद उतार था। उतार में यदि इंजन न भी काम करे तो मोटर आसानी से चली जाएगी, ऐसा ड्राइवर ने कहा। अपनी बेवकूफी से और उत्साह में हमने यह निश्चय किया कि जो थोड़ी चढ़ाई है, उसे हम लोग मोटर धकेल कर ही पार कर लेंगे। हमने मोटर को आगे धकेलना शुरू किया। 20-30 गज तक मोटर धकेल ले गये। वहां ढाल बहुत कम था और चढ़ाई अधिक। हम लोगों ने जोर लगाया। नतीजा यह हुआ कि चन्द गज ऊपर ढकेलने के बाद मोटर उल्टे पीछे की ओर चली। हम अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे रोकने लगे। किसी तरह खड्ड में गिरने से उसे बचा पाए। उसके बाद अब फिर हिम्मत न हुई कि मोटर ढकेलने की कोशिश की जाए।

रात के 12-1 बजे होंगे। मध्य जंगल में हम सात आदमी किसी तरह मोटर में बैठकर आए थे। ड्राइवर उस निर्जन स्थान की भयानक बातें कहकर हम लोगों को डराता भी जाता था। उसने कहा कि यहां हिंसक जानवरों और चोर डाकुओं दोनों का डर है। .....हम सलाह कर ही रहे थे कि जंगल के भीतर से गरगराहट सुन पड़ी। ड्राइवर तो बहुत डर गया। कहने लगा, यह

भयानक आवाज़ बनैले जानवर की है। कुछ ही देर में आवाज़ बन्द हो गई। हम सब शान्त होकर किसी तरह मोटर में बैठ गए। कुछ देर बाद जब शान्ति हुई, तो हमने सोचा कि मोटर यहीं छोड़ दी जाय और हम लोग डाक बंगले तक पैदल चलकर वहां सोयें। पर ड्राइवर इस पर राजी न हुआ, वह रोने चिल्लाने लगा।

अन्त में यह तय हुआ कि तीन आदमी मोटर के साथ ठहर जायें, बाकी चार आदमी डाक बंगले पर चले जायें। .....डाक बंगले पहुंचते-पहुंचते हम लोग प्यास के मारे परेशान थे। डाक बंगले में कोई था नहीं, दरवाजे बन्द थे। हमने किसी तरह से दरवाजा खोला। अन्दर से टटोल कर एक बाल्टी निकाली गई। दो चारपाइयां और दो मेज थीं, वे भी बाहर निकाली गईं। पर सिर्फ बाल्टी से तो प्यास बुझती न थी। कुएं और डोरी की आवश्यकता रह ही गई। .....हम फिर कुएं की तलाश में निकले। वह मिला भी। अपनी चादरों को जोड़ कर डोरी बनाई गई। उसी से बाल्टी में पानी निकाला गया। पानी पीकर हम लोगों में से कुछ तो चारपाई पर, और कुछ टेबुल पर सो रहे।
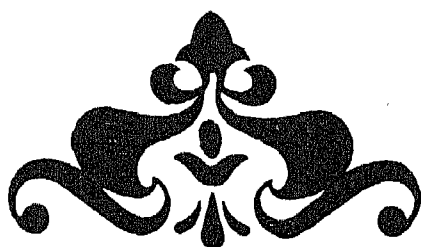
बिहार भूकम्प और गांधी का रत्न

15 जनवरी 1934 को बिहार में भयंकर भूचाल आया। हजारों घर बरबाद हुए। करोड़ों का नुकसान हुआ। उस समय राजेन्द्र बाबू बीमारी की अवस्था में पटना अस्पताल में कैद थे। उस समय तक वे *बिहार के गांधी* कहे जाने लगे थे। भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए सरकार ने उन्हें जेल के अस्पताल से मुक्त कर दिया।

अस्पताल से छूटते ही राजेन्द्र बाबू भूकम्प पीड़ित क्षेत्र में गए। वहां की दशा देखकर वे द्रवित हो गए। बीमार शरीर से रोग जाने कहां चला गया, और वे तबाही में पड़े लोगों की सेवा करने में जी जान से लग गए। इसी समय बिहार के गवर्नर ने राजेन्द्र बाबू को बुलाया और कहा—*सरकार अपने कोष से जो मदद करना चाहती है, उसमें तुम सहायता करो*। राजेन्द्र बाबू ने जवाब दिया—

> सरकार जो भी कर रही है, उसका हम विरोध नहीं करेंगे, पर समाज के कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो सरकार को पैसे न देकर हम समाज सेवकों को देना चाहेंगे। उससे जनता को अधिक राहत और सन्तोष मिलेगा।

राजेन्द्र बाबू ने अपने मित्रों के साथ मिलकर *बिहार सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी* के नाम से संस्था की स्थापना की। राजेन्द्र प्रसाद ही इसके अध्यक्ष हुए और जयप्रकाश नारायण सचिव। राजेन्द्र प्रसाद की अपील पर रुपये और अन्य सामान आना शुरू हुआ। कुछ ही दिनों बाद *बिहार सेन्ट्रल रिलीफ फंड* में आई रकम

सरकारी फंड से बहुत आगे हो गई। राजेन्द्र बाबू ने दान फंड में आई धनराशि की पाई-पाई का हिसाब रखा। उन्होंने सभी दान दाताओं की सूची छपवा दी। वह लगभग चार सौ पन्ने की पुस्तक बन गई। राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> सार्वजनिक काम में रुपये-पैसे के मामले में सफाई निहायत जरूरी है। सार्वजनिक फंड में ईमानदारी की कीमत सच्ची सेवा से कम नहीं है।

राजेन्द्र बाबू की मदद के लिये गांधी जी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, कुमारप्पा, कृपलानी, हार्डीकर, श्रीमती सोफिया सोमजी, कुमारी मुरिमल लेस्टर, कुमारी अगाथा हैरिसन तथा दीनबन्धु एंड्रयूज आदि ने पूरी शक्ति और तालमेल के साथ काम किया। देश-विदेश से जो धन आया और सामान मिला, उसका खुलासा सब के सामने रखा गया। इन सब कामों की सफलता के पीछे राजेन्द्र प्रसाद की कर्मठता, ईमानदारी और कार्यकर्ताओं के साथ मिल कर काम करने की अद्‍भुत शक्ति थी। इस संगठन ने उजड़े बिहार को फिर से जिस प्रकार सजाया-संवारा, उसे देखकर कहा गया कि अभिशाप भी कभी-कभी वरदान बन जाता है।

इस सफलता से राजेन्द्र बाबू की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि देशवासियों ने उनके नाम के साथ *देशरत्न* जोड़ दिया। इसी बात को लेकर जय प्रकाश नारायण ने एक जगह लिखा है—*गांधी जी ने अपने दरबार में कई रत्न इकट्ठे किए थे। उनमें देशरत्न तो राजेन्द्र बाबू ही कहे गए।*

कांग्रेस अध्यक्ष
और
नैतिकता

उस समय कांग्रेस अव्यवस्थित सी थी। राजेन्द्र बाबू की संगठन शक्ति और सेवा परायणता को पूरा देश जान चुका था। सन् 1934 का 48वां कांग्रेस अधिवेशन बम्बई में होने जा रहा था। गांधी जी सहित कांग्रेस समिति का एकमत से फैसला हुआ कि इस अधिवेशन का अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू को बनाया जाए।

प्रस्ताव राजेन्द्र बाबू के पास आया। उन्होंने बड़ी विनम्रता से लिख दिया—अभी मैं इस पद का भार नहीं उठा पाऊंगा। यह बात गांधी जी तक पहुंची। गांधी जी ने राजेन्द्र बाबू को बुलाया और पूछा—*तुमने यह प्रस्ताव क्यों ठुकरा दिया?* राजेन्द्र बाबू ने कहा—*आपकी कोई भी आज्ञा शिरोधार्य है, किन्तु मेरे सामने एक नैतिकता का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है, जिसकी वजह से अध्यक्ष पद स्वीकार करना मुझे ठीक नहीं लग रहा।*

गांधी जी ने फिर पूछा—*क्या बात है, पूरी बात तो बताओ।* राजेन्द्र बाबू थोड़ी देर चुप रहे, फिर रुक-रुक बोले—*कांग्रेस का अध्यक्ष ऐसे व्यक्ति को नहीं होना चाहिए, जो कर्जदार हो।*

कर्जदार.....! गांधी जी अवाक् रह गये। राजेन्द्र बाबू ने आगे बताया—

> अभी थोड़े दिन पहले ही मेरे बड़े भाई की मृत्यु हुई है। मुझे तो घर की आमद और खर्च का कुछ पता नहीं था। सब कुछ भाई ही देखते थे। अभी कुछ दिन पहले मुझे पता चला है कि हमारे ऊपर दो लाख का कर्ज है। वह मुझे चुकाना है।

गांधी जी ने सेठ जमुनालाल बजाज को बुलाया। उन्हें कर्ज के बारे में बताया और पूछा—*क्या राजेन्द्र प्रसाद को इस भार से मुक्त कराया जा सकता है?*

गांधी जी का आदेश पाकर सेठ जी ने अपने मैनेजर को जीरादेई भेजा, पूरी जानकारी प्राप्त की। पता चला कि जमींदारी तथा पूरी जायदाद रेहन कर दी जाय, और कुछ सामान भी बेच दिया जाय तभी वह कर्ज आसानी से चुकाया जा सकता है। किसी तरह कर्ज चुकाने का प्रबन्ध किया गया। तब जाकर राजेन्द्र बाबू ने कांग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार किया।

अब राजेन्द्र बाबू पहली बार बम्बई कांग्रेस में अध्यक्ष हुए, उस समय पिछले चार साल से सभी नेता जेल में थे। कांग्रेस के भवन, आश्रम, दफ्तर गैरकानूनी कह कर जब्त कर लिए गए थे। राजेन्द्र बाबू ने एक-एक करके सबको सम्भाला, आबाद किया। स्थानीय संगठनों से लेकर प्रान्तीय और फिर अखिल भारतीय संगठनों को भी सुधारा।

अबतक अखिल भारतीय कांग्रेस का कोई स्थायी दफ्तर नहीं था। राजेन्द्र बाबू के अध्यक्ष काल में ही पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपना आलीशान आनन्द भवन कांग्रेस को दे दिया। उसी का नाम *स्वराज भवन* पड़ा। वही *स्वराज भवन* कांग्रेस का स्थायी दफ्तर बना।

इस समय तक कांग्रेस के पचास साल पूरे हो गए थे, इसलिए स्वर्ण जयन्ती मनाने का निश्चय किया गया। स्वर्ण जयन्ती का मुख्य महोत्सव बम्बई में हुआ। सारे देश में बड़ी धूम धाम और हर्ष के साथ यह जयन्ती मनाई गई। कांग्रेस की लोकप्रियता देखकर सरकार ने सोचा, अब अवश्य कुछ न कुछ देना पड़ेगा। इसलिए कानून लागू किया, जो गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट-1935 के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार देश में आम चुनाव कराए गए और जनता के प्रतिनिधियों को प्रान्तीय शासन सौंप दिया गया।

अपने अध्यक्ष काल में राजेन्द्र बाबू ने दो महत्त्वपूर्ण कार्य किए। एक, उन्होंने कांग्रेस का इतिहास लिखवाया, उसे हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तेलगू और उर्दू में एक साथ प्रकाशित कराया। दूसरा काम इससे भी महत्त्वपूर्ण हुआ। उन्होंने देशी राज्यों में प्रजा मडलों की स्थापना कराई। अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने पूरे देश का दौरा भी किया। सभी प्रान्तों में सम्मेलन भी कराए। इससे कांग्रेस की नींव बहुत मजबूत हुई।

इसी समय बलूचिस्तान के क्वेटा नगर में भूकम्प आया। राजेन्द्र बाबू ने तुरन्त सहायता समिति बनाई, भूकम्प पीड़ितों की सहायता में रात-दिन एक कर दिया।

सन् 1937 में हरिपुरा कांग्रेस हुई और इसके अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस चुने गये। किन्हीं परिस्थितियों में दूसरी बार भी त्रिपुरा कांग्रेस में सुभाष बाबू को ही अध्यक्ष चुन लिया गया। इससे कांग्रेस कार्य समिति में फूट पड़ गई। इस कशमकश के बीच सन् 1939 की 28 अप्रैल को अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक बुलाई गई। सबके लिए यह चुनौती की स्थिति थी। यहां फिर कांग्रेस कमेटी ने राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष पद संभालने को कहा। पहले तो राजेन्द्र बाबू इनकार करते रहे, फिर गांधी जी का आदेश हुआ, और उस आदेश को वे टाल नहीं सके। दूसरी बार वे कांग्रेस के अध्यक्ष हुए।

इन्हीं दिनों युद्ध छिड़ गया। अंग्रेज सरकार चाहती थी कि भारत अंग्रेजों की सहायता करे। गांधी जी ने स्पष्ट कर दिया कि भारत को युद्ध में घसीटना अनैतिक है। कांग्रेस का अध्यक्ष होने के नाते राजेन्द्र बाबू हर माह समिति की बैठकें बुलाते थे। वे परिस्थितियों का मूल्यांकन कराते रहे और अपने निर्णय से सरकार को अवगत कराते रहे। कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग रखी तो वायसराय ने राजेन्द्र बाबू को समझौते के लिए बुलाया और कहा—*तुम युद्ध में इंग्लैंड की मदद करो। जहां तक पूर्ण स्वतंत्रता का प्रश्न है, ब्रिटिश सरकार युद्ध के बाद उस पर*

विचार करेगी। राजेन्द्र बाबू ने वायसराय का प्रस्ताव ठुकरा दिया और प्रान्तों के कांग्रेस मंत्रिमंडलों को इस्तीफा देने का आदेश किया।

सन् 1941 से 45 तक देश के हज़ारों स्वतंत्रता सेनानी जेलों में बन्द किए गए। रामगढ़ के बाद कांग्रेस का अधिवेशन मेरठ में हुआ। इस अधिवेशन के अध्यक्ष आचार्य जे० बी० कृपलानी हुए। उस समय तक अन्तरिम सरकार भी बन गई थी। अन्तरिम सरकार और कांग्रेस संगठन के बीच में कुछ मतभेद हो गया। इसी मतभेद के कारण कृपलानी जी ने इस्तीफा दे दिया।

फिर विषम परिस्थिति आई। उनकी जगह किसे अध्यक्ष बनाया जाय, जो मतभेद को मिटा सके और कांग्रेस की पतवार को सही दिशा दे सके। गांधी जी सहित सभी नेताओं का एकमत हुआ—फिर राजेन्द्र प्रसाद से कहा जाय। इस प्रस्ताव को लेकर नेहरू जी और सरदार पटेल राजेन्द्र बाबू के पास गए, अध्यक्ष पद स्वीकार करने का आग्रह किया। राजेन्द्र बाबू को फिर अध्यक्ष पद स्वीकार करना पड़ा।

मतभेद था भी तो कैसा?

एक बार नहीं, कई बार जवाहर लाल जी से राजेन्द्र बाबू का मतभेद हुआ। लेकिन इस मतभेद के भीतर सद्भाव की कैसी भावना थी। राजेन्द्र बाबू अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

> दिल्ली वाली बैठक में मैंने देखा कि कई विषयों पर हमारा और उनका मतभेद है। यह कार्यक्रम के सम्बन्ध में उतना नहीं, जितना दृष्टिकोण के सम्बन्ध में था। हम दोनों किसी कार्यक्रम के सम्बन्ध में एक राय भी रखते, तो उस नतीजे पर हम दो रास्तों से पहुंचे होते। यदि एक ही बात को कहना भी चाहते, तो उसे दो प्रकार की भाषा में कहते। यदि एक ही रास्ते पर चलना भी चाहते, तो दो प्रकार की सवारियों पर चलना चाहते। यदि एक ही प्रस्ताव करना चाहते तो अलग-अलग भूमिका बनाते।

एक जगह फिर लिखा है—·····पर अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हम मानते थे कि वह हमसे अधिक जानकारी रखते हैं और उनके विचारों की हम बहुत कद्र करते थे। इसीलिए उनकी ही बात मान लेते।

हम लोग जवाहर लाल जी की कार्य दक्षता, त्याग, परिश्रम और विचार गांभीर्य के कायल थे। उनसे अलग होना हम किसी तरह नहीं पसन्द करते थे। वह भी समझते थे कि सूबों में काम करने वालों और असर रखने वालों में शायद हम लोग ज्यादा जबरदस्त थे, इसलिए वह भी हमको अलग करना या हमसे अलग होना नहीं चाहते थे। बात यह थी कि दोनों पक्ष पूरे सम्मान का भाव रखते थे और जानते थे कि देश के लिए आपस

की जुदाई हितकर नहीं होगी। शायद हम यह भी जानते और समझते थे कि हम एक-दूसरे की त्रुटियों को पूरा कर सकते हैं। हम यह भी समझते थे कि चाहे हममें कितना भी मतभेद हो, देश यह नहीं बरदाश्त.करेगा कि हम एक दूसरे से अलग हो जायें।

जवाहर लाल जी और गांधी जी में भी मतभेद हो जाया करते थे। लेकिन इन मतभेदों में भी एक सद्भाव रहता था, देश के हित की भावना रहती थी। राजेन्द्र बाबू लिखते हैं—

> ······बहुत सी बातों में गांधी जी से मतभेद होने पर भी जवाहर लाल जी उनके नेतृत्व के महत्त्व को जानते और मानते थे। उसे किसी तरह कमजोर करना नहीं चाहते थे। यह बात दूसरों में नहीं थी। यही कारण था कि मतभेद होते हुए भी हम जवाहर लाल जी के साथ काम कर सकते थे और दूसरों के साथ चलना कठिन हो जाता था।······

8 अगस्त, 1942 की रात में 10 बजे कांग्रेस ने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया, जिसमें गांधीजी ने *करो या मरो* का नारा दिया। इस निर्णय के बाद ही गांधी जी तथा अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। राजेन्द्र बाबू को भी पटना के सदाकत आश्रम से गिरफ्तार किया। उस समय वे बीमार थे। राजेन्द्र बाबू के गिरफ्तार होते ही बिहार में क्रांति की लहर दौड़ गई। पटना में जोरों का प्रदर्शन हुआ, बड़े-बड़े जुलूस निकाले गये। कचहरियां बन्द हो गईं। एक बहुत बड़ा जुलूस सेक्रेटेरिएट पर झंडा चढ़ाने पहुंचा। सरकार का दमन चक्र चल ही रहा था। लाठी चार्ज हुआ, फिर गोली चली। 8-9 युवक शहीद हो गए। इस बार राजेन्द्र बाबू लगभग 3 वर्ष जेल में रहे।

इस सारे उलट फेर के बाद 2 सितम्बर, 1946 को भारत में अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई। इसमें 12 मंत्री मनोनीत किए गए। राजेन्द्र बाबू भी इनमें से एक थे। वह कृषि और खाद्य मंत्री बनाए गए। इन दिनों देश में अन्न संकट भी था। राजेन्द्र बाबू ने

बड़ी कुशलता से देश को भुखमरी से बचा लिया और कुछ दिन बाद अन्न संकट भी जाता रहा। अन्तरिम सरकार में विधान परिषद् की भी स्थापना हुई। इसमें राजेन्द्र बाबू ही सर्व सम्मति से अध्यक्ष चुने गए।

संविधान सभा की अध्यक्षता

9 दिसम्बर, 1946 को भारत की संविधान सभा की बैठक केन्द्रीय हॉल में हुई। इस सभा के स्थायी अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू चुने गए। सचमुच में यह भी एक संकट की घड़ी थी। संविधान सभा न जाने कितनी समस्याओं के बीच बनी थी। एक राजेन्द्र बाबू ही ऐसे थे, जिन पर सबकी नजरें गईं। गोपाल स्वामी आयंगर ने राजेन्द्र बाबू के अध्यक्ष चुने जाने पर कहा था—

> डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का निर्वाचन असीम विश्वास का प्रतीक है। यह विश्वास विधान-परिषद् ही नहीं, सम्पूर्ण देश का है। सभापति चुन कर वस्तुतः हमने अपना अभिनन्दन किया है कि उन्होंने संविधान सभा के स्थायी सभापति का स्थान स्वीकार किया है।

सचमुच में राजेन्द्र बाबू ही इस पद के योग्य भी थे। वे कानून में सिरमौर तो थे ही, लोगों के मन में उनके प्रति सम्मान भी था। संविधान बनाने के लिए जिस दूरदर्शिता की ज़रूरत थी, वह राजेन्द्र बाबू में थी। अनेक दिग्गज, नामी-गरामी बैरिस्टर इस संविधान सभा में चुनकर आए थे। राजाजी थे, पटेल थे, स्वयं नेहरू थे, पर इस गौरवशाली पद के लिये राजेन्द्र बाबू से बढ़ कर कोई नहीं था। ब्रिटिश सरकार की ओर से यह सभा कई बंधनों में जकड़ी हुई थी, किन्तु राजेन्द्र बाबू ने इसे सार्वभौम सत्ता सम्पन्न ही माना। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—

> इस संविधान सभा का काम बहुत मुश्किल है।·····हम यह

मानते हैं कि जहां-जहां भी पहली बार संविधान सभाएं बनती होंगी, वहां-वहां भी ऐसी दिक्कतें आती होंगी। इन कठिनाइयों के बावजूद अपने काम को उसी खूबी के साथ अंजाम दें। चाहिए इसमें सच्चाई, चाहिए इसमें एक-दूसरे के लिए अपने दिल में इज़्जत और सहृदयता, चाहिए हमको वह ताकत कि हम एक-दूसरे की बातों को सिर्फ समझ ही न सकें, बल्कि जहां तक हो सके, उनके दिलों में घुसकर उनको खुद अनुभव कर सकें, महसूस कर सकें। इस तरह से काम कर सकें कि जिसमें कोई यह न समझे कि उसकी उपेक्षा की गई या उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया। अगर ऐसा हो, अगर हममें स्वयं ऐसी शक्ति आ जाए, तो मुझे इस बात का विश्वास है कि बावजूद इन कठिनाइयों के, और सब मुश्किलों के, हम अपने आप में कामयाब होकर रहेंगे। मैं जानता हूं कि इस परिषद्, इस सभा की पैदाइश तरह-तरह के प्रतिबन्धों के साथ हुई है। .....मगर साथ ही मैं यह भी जानता हूं कि इस सभा को पूरा अधिकार इस बात का है कि अपनी कार्रवाई जिस तरीके से चाहे, करे। किसी भी बाहरी ताकत को अख्तियार नहीं है कि इसकी कार्रवाई में कुछ भी हस्तक्षेप कर सके। इतना ही नहीं, मैं यह भी मानता हूं जो पाबन्दियां इसको जन्म के साथ मिली हैं, उनको तोड़ देने और उनको खत्म कर देने का अख्तियार भी इस एसेम्बली को है। आपकी कोशिश यही होनी चाहिए कि हम इन बन्धनों से बाहर निकलकर एक ऐसा विधान, एक ऐसा कायदा अपने देश के लिए तैयार करें, जिससे इस देश के हर एक स्त्री-पुरुष को यह मालूम हो जाय कि चाहे वह किसी भी मजहब का क्यों न हो, किसी भी प्रान्त का क्यों न हो, किसी भी विचार का क्यों न हो, उसके सभी अधिकार सदा सब तरह से सुरक्षित हैं। अगर हमारी एसेम्बली में इस तरह का प्रयत्न किया गया और उसमें हमें सफलता मिली, तो मैं यह

भी मानता हूं कि संसार के इतिहास में यह एक इतना बड़ा काम होगा, जिसके मुकाबले की दूसरी मिसालें कम मिल सकती हैं……। मैं सब को दिल से धन्यवाद देता हूं और यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आइन्दा की कार्रवाई में जो कुछ शक्ति ईश्वर ने मुझे दी है, और जो कुछ थोड़ी बुद्धि मुझे मिली है और जो कुछ संसार का थोड़ा बहुत तजुर्बा मुझे हासिल हुआ है, वह सब आपकी सेवा में अर्पित रहेगा। मैं आशा करता हूं कि आप अपनी ओर से जो कुछ मदद हमें देते हैं, देते रहेंगे।

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार को सत्ता सौंपी। यह सत्ता संविधान परिषद् के अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के हाथों में ही हस्तान्तरित की गई। 15 अगस्त, 1947 की अर्द्धरात्रि में ठीक 12 बजे राजेन्द्र प्रसाद ने प्रस्ताव रखते हुए कहा कि—वायसराय को इस बात की सूचना दी जानी चाहिए कि—

1. भारतीय संविधान सभा ने भारत का शासनाधिकार ग्रहण कर लिया है।
2. भारतीय संविधान सभा ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया है कि 15 अगस्त, 1947 से लॉर्ड माउन्टबेटन वायसराय न रहकर भारत के गवर्नर जनरल हों, और
3. यह सन्देश अध्यक्ष तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लार्ड माउन्टबेटन को पहुंचाया जाय।

राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में संविधान निर्माण का काम आगे बढ़ा और तेजी से बढ़ा। यह काम 11 दिसम्बर, 1946 को आरम्भ हुआ था और लगभग तीन साल में 24 जनवरी, 1950 को पूरा हो गया।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति

24 जनवरी, 1950 को ही संविधान सभा ने सर्वसम्मति से राजेन्द्र बाबू को भारत का राष्ट्रपति चुन लिया। राजेन्द्र बाबू भारत के प्रथम राष्ट्रपति हुए। राजेन्द्र बाबू ने राष्ट्रपति पद की शपथ लेने के बाद दो मुख्य बातें कहीं—

एक, हमारे लम्बे और घटनापूर्ण इतिहास में यह प्रथम अवसर है, जब उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक, और पश्चिम में काठियावाड़ और कच्छ से लेकर पूर्व में काकीनाडा और उत्तर-पूर्व में कामरूप व अरुणाचल तक एक विशाल देश का संविधान और संघ राज्य के छत्राधीन हुआ है। इसमें सम्पूर्ण देश के करोड़ों नर-नारियों के कल्याण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया गया है। दूसरी बात, हमारे गणराज्य का उद्देश्य है, सभी नागरिकों को बिना किसी वर्ण अथवा वर्ग भेद के न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त कराना तथा इसके विशाल प्रदेशों में बसने वाले और भिन्न-भिन्न आचार-विचार वाले लोगों में भाई चारे की अभिवृद्धि करना। इन दो बातों का हमें सदा ध्यान रखना है। अधिकार की चर्चा के साथ अपने कर्त्तव्य पालन पर भी हमें दृढ़ रहना है।

राजेन्द्र बाबू बारह साल से भी अधिक समय तक भारत के राष्ट्रपति रहे। राष्ट्रपति के पद पर रहते हुए उन्होंने कल्याण-कारी परम्पराओं और संवैधानिक परिपाटियों को जन्म दिया। वे अपने व्यक्तित्व में ही संसदीय और प्रजातंत्र पद्धति के मूर्तमान

स्वरूप थे। नीचे से ऊपर तक खद्दर की पोशाक—गंजी, धोती, कुर्ता, और फिर कुर्ते के ऊपर बंडी। सिर पर छोटे-छोटे बाल, और फिर उसके ऊपर लापरवाही से पहनी गई गांधी टोपी। एक देहाती भारतीय किसान जैसा शरीर, चमकीली आंखें, गझिन मूंछें—ऐसा था डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का व्यक्तित्व।

जो भी विदेशी अतिथि भारत आते थे, वे राजेन्द्र बाबू के भव्य व्यक्तित्व की एक अमिट छाप अपने साथ ले जाते थे। एक बार जेनेवा विश्व पार्लियामेंट्री सम्मेलन के महामंत्री श्री आंद्रेनोन राजेन्द्र बाबू से मिले और इस मुलाकात का उनके मन पर जो असर पड़ा, वह उनके ही शब्दों में इस प्रकार है—

> आपके प्रेसीडेन्ट अत्यन्त विनम्र व्यक्ति हैं। उनकी विनम्रता उनकी आकृति पर स्पष्ट अंकित रहती है। किन्तु जब मैं उनसे हाथ मिला रहा था, तभी मुझे मालूम हो गया कि वे कितनी बड़ी शक्ति हैं—राख में ढकी आग जैसी। मुझे लगा, उनकी विनम्रता के भीतर से कोई अप्रतिम महत्ता झांक रही है। मैंने अनेक महापुरुषों से हाथ मिलाया है, पर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद से हाथ मिलाने की बात तो मैं कभी भूल ही नहीं सकता।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उनके सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं, उनसे राजेन्द्र बाबू के समग्र जीवन पर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही राजेन्द्र बाबू के प्रति नेहरू जी के सद्भाव और आदर का भी संकेत मिलता है।

पंडित जी कहते हैं—

> राजेन्द्र बाबू का और मेरा पैंतालीस बरस का साथ रहा। कम से कम चालीस साल तक तो हम साथ-साथ काम करते रहे। पहले हम आजादी की लड़ाई में साथ रहे, उसके बाद वे राष्ट्रपति बने और मैं उनका मंत्री रहा। इस लम्बे अरसे में मैंने उनको बहुत देखा और उनसे बहुत कुछ सीखा। हज़ारों

तस्वीरें आज मेरे सामने से गुजर जाती हैं।

हल्के-हल्के इस युग में बड़े-बड़े नेता गुजरते चले गए, पर खुशनसीबी यह है कि यह सिलसिला टूटा नहीं, और उसको जारी रखने में राजेन्द्र बाबू का बहुत बड़ा हाथ था। एक मामूली हैसियत से वे भारत के ऊंचे ओहदे पर पहुंचे। फिर भी उन्होंने अपना तर्ज नहीं बदला। हिन्दुस्तानियत उनमें सोलहों आने थी। व्यक्तित्व की महानता के साथ-साथ उनकी सरलता और नम्रता बराबर बनी रही। उन्होंने ऐसी मिसाल कायम की कि भारत की शान और इज्जत बढ़ी। वे इस बात के नमूने बनकर रहे कि भारत की भारतीयता को कायम रखना और नई बातों को सीखना है, वास्तव में वे भारत के प्रतीक हो गए। आज का भारत, भारत है, और भारत ही रहेगा, वह किसी की नकल नहीं करेगा।

उनके राष्ट्रपति के पद पर रहने के बारह सालों का जमाना भारत का अच्छा जमाना गिना जाएगा। इस जमाने में हमने जो कुछ किया, उनकी निगहबानी में किया और शान से किया। हम यदि गलती करते थे, तो वे हमें सम्भालते थे। यह बारह साल का जमाना तो उनका जमाना समझा जाएगा। जो जिन्दा कौम होती है, वह जब मौका आता है, कोई न कोई बुलन्द इन्सान पैदा कर देती है। राजेन्द्र बाबू ने अपना सिक्का इस जमाने पर डाला और हमारा सिर ऊंचा हुआ। हिन्दुस्तान की आजादी मजबूती से जमी, जबकि और देशों में, खास तौर से पड़ोसी देशों में, कितनी बार उलट फेर हुए। हिन्दुस्तान और मुल्कों के मुकाबले किस कदर मजबूती से चला है·····यह इसी गांधी युग की देन है, जिसने न सिर्फ आजादी और एकता दी, बल्कि ऐसी परम्पराएं भी पैदा कीं, जिनसे आजादी की जड़ बहुत गहराई तक जम गईं। राजेन्द्र बाबू इस युग की बहुत मजबूत कड़ी थे।

उनकी मुद्रा और आंखें भुलाई नहीं जा सकतीं, क्योंकि

उनसे सच्चाई झलकती थी। उनकी काबिलियत, उनके दिल की सफाई और अपने मुल्क के लिए उनकी मुहब्बत ने उनके लिए हर भारतवासी के दिल में गहरी जगह पैदा कर दी।

उनके संतों जैसे जीवन और अभिमानरहित आचरण के सम्बन्ध में डॉ० राधाकृष्णन ने इस प्रकार कहा था — *उनमें जनक, बुद्ध और गांधी की छाप थी। एक शब्द में वह भारतीयता के प्रतिरूप थे, और तभी वह कोटि-कोटि हृदयों के राजेन्द्र बन गये।*

सादगी

राजेन्द्र बाबू का पद बहुत बड़ा था। उनका नाम और यश भी बहुत था। पर इस पद और यश का उनके मानवीय व्यवहार पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा। वे जिस प्रकार सरल और सीधे प्रारम्भ में थे, वैसे ही अन्त तक रहे।

संविधान में राष्ट्रपति की निर्दिष्ट पोशाक होने के कारण वे चूड़ीदार पैजामा और शेरवानी पहनते थे। किन्तु उन्हें अपने कुर्ते, धोती और टोपी में ही अधिक आराम मिलता था। उनके कपड़े भी कभी व्यवस्थित नहीं रहते थे। कभी कुर्ते का बटन खुला है, कभी टोपी तिरछी लगी है, एक पैर की धोती घुटने तक है, तो दूसरी एड़ी तक जा रही है। उनकी इस बेढंगी और बेपरवाह पोशाक को देख कर एक बार पं० मोतीलाल नेहरू ने उनसे पूछा—*आप कपड़े पहनते ही क्यों हैं?* राजेन्द्र बाबू ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—*सिर्फ शरीर ढकने और बचाने के लिए।*

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित भारत के राजदूत की हैसियत से मैक्सिको गईं। अपना परिचय पत्र प्रस्तुत करते हुए श्रीमती पंडित ने जब राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद का फोटो पेश किया, तो वह एक-एक हाथ से गुजरते हुए आगे बढ़ता गया और आकर्षण का केन्द्र बन गया। मैक्सिको के राष्ट्रपति ने उस फोटो की ओर गौर से देखकर कहा—*अरे! यह तो मैक्सिको के किसान का चेहरा है। टोपी की जगह साबेरारो को रखें, तो ये हूबहू मैक्सिको के किसान लगते हैं।*

राजेन्द्र बाबू को शायद किसान लगना अच्छा भी लगता था, क्योंकि किसान में ही तो भारत है, भारत की मिट्टी की गंध है। राजेन्द्र बाबू इस भारत और भारत की माटी को अपने अस्तित्व

का अंग बनाए रखना चाहते थे। एक बार लॉर्ड वेबिल ने राजेन्द्र बाबू से कहा —*यदि आप से पूछा जाय कि आप कौन सा विभाग लेंगे, तो आपका क्या उत्तर होगा?* राजेन्द्र बाबू ने तुरन्त कहा—*खाद्य और कृषि। क्योंकि ये मेरे लिए बिल्कुल अपने हैं।*

राजेन्द्र बाबू जब राष्ट्रपति भवन में आए, तो उनकी मोटी-मोटी मूंछें सुधारी जाने लगीं। वे रोज दाढ़ी बनवाने के भी अभ्यस्त हो गए। किन्तु नीम की दातून को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। उनके सभी दांत अन्त तक सुरक्षित और मजबूत रहे। एक बार उनकी सेवा करने वाली नर्स ने उनके सफेद दांतों को देख कर पूछा—*श्रीमान, क्या ये नकली दांत हैं?* राजेन्द्र बाबू ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—*मेरी कोई चीज नकली नहीं।*

शाकाहार

राष्ट्रपति भवन में उनके खाने-पीने में भी कोई बड़ा अन्तर नहीं आया—वही चपाती, दाल-भात, साग-सब्जी। साथ में एक सन्देश का टुकड़ा मिल जाता और अन्त में एक आम, तो वही उनके लिए सर्वोत्तम भोजन था। आम के अलावा उन्हें भुट्टा भी बहुत प्रिय था। चाय से उनका कोई लगाव नहीं था, लेकिन जबरदस्ती इसकी आदत डालनी पड़ी। उनके प्याले में कोई कितनी ही चीनी डाल दे, पर जब वह पूछता—*और चाहिए?* राजेन्द्र बाबू का उत्तर होता—*आपकी मर्जी*। इस प्रकार चाय पीते हुए भी हमेशा उसके स्वाद से वे उदासीन ही रहे।

उन्होंने कभी मांस नहीं खाया, सदैव शाकाहारी रहे। उनका मत था कि मांसाहार दया और सहानुभूति के मार्ग में बाधक है। पर विदेशी अतिथियों के लिए राष्ट्रपति भवन में सदैव मांस परोसा जाता था और वे उसे अतिथि-सत्कार और राष्ट्रपति भवन की मर्यादा समझकर ही स्वीकार करते थे। विश्व शाकाहारी सम्मेलन के अवसर पर एक पत्र प्रतिनिधि ने उनसे प्रश्न किया—*अब भी राष्ट्रपति भवन में मांस क्यों परोसा जाता है?* उन्होंने हंसी के बीच उत्तर दिया—*मैं तो शाकाहारी हूं, लेकिन मेरी सरकार नहीं*।

सहनशीलता

कठिन से कठिन परिस्थिति में राजेन्द्र प्रसाद सहनशील बने रहते थे। क्रोध को वे हिंसा का रूप ही मानते थे।

एक बार जब वे बिहार प्रदेश कांग्रेस के प्रधान मंत्री थे और सदाकत आश्रम में रह रहे थे, वहां के एक प्रमुख कांग्रेसी नेता आए, नाम था मौलाना फजुल रहमान। वे बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। कुछ शिकायत थी, जिसे लेकर वे राजेन्द्र बाबू के पास पहुंचे थे। राजेन्द्र बाबू जमीन पर बैठे चरखा कात रहे थे। मौलाना वहां पहुंचते ही बिना किसी बात का जिक्र किए राजेन्द्र बाबू को अनाप-शनाप गालियां देने लगे। राजेन्द्र बाबू चुपचाप चरखा चलाते रहे। कोई पांच मिनट तक मौलाना की गालियों की बौछार चली। इसी बीच राजेन्द्र बाबू लघुशंका के लिए बाहर गए और लौट कर फिर चरखा कातने में जुट गए। मौलाना इस बीच चुप हो गए थे। राजेन्द्र बाबू ने उनसे पूछा—*क्यों मौलाना साहब, क्या आपकी गालियां खत्म हो गई?* मौलाना पर इस बात का बड़ा असर हुआ। उनकी आंखें भर आईं। उन्होंने राजेन्द्र बाबू के पांव पकड़ लिए।

किसी को दुख न देना, कोई अपने को दुख दे, तब भी सहनशीलता का व्यवहार करना—यही तो है अहिंसा वृत्ति। यह राजेन्द्र बाबू के रोम-रोम में व्याप्त थी। सर तेज बहादुर सप्रू ने राजेन्द्र बाबू के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहा था—*गांधी की अहिंसा अभ्यास द्वारा प्राप्त वृत्ति है, जबकि राजेन्द्र बाबू की सर्वथा स्वाभाविक।*

समता और सद्भाव

राजेन्द्र बाबू छोटे-बड़े सबसे एक ही तरह का भाव रखते थे। उनका एक पुराना नौकर था, तुलसी। तुलसी राजेन्द्र बाबू की सेवा-संभाल बड़े प्रेम से करता था। किन्तु कभी-कभी कुछ लापरवाही भी कर बैठता था। एक दिन वह राष्ट्रपति भवन में राजेन्द्र बाबू की मेज साफ कर रहा था। उस मेज पर हाथी दांत का बना एक फाउन्टेन पेन रखा था, जो राजेन्द्र बाबू को कहीं से उपहार में मिला था। उन्हें वह पेन बहुत प्रिय था। हमेशा वे उसी से लिखने पढ़ने का काम करते थे। तुलसी ने मेज का कपड़ा फटकार कर साफ करना चाहा, तो पेन नीचे गिरकर टूट गया। पेन टूटने से उसकी स्याही भी नीचे गिरकर बिछे कालीन पर फैल गई।

राजेन्द्र बाबू जब अपने दफ्तर में आए, यह दृश्य देखा तो तुलसी पर बहुत नाराज़ हुए। वह कई बार पहले भी इस प्रकार की असावधानियां कर चुका था। राजेन्द्र बाबू ने अपने सचिव को बुलाया और कहा—*इसे राष्ट्रपति भवन में तुरन्त दूसरी जगह लगा दो*। सचिव ने ऐसा ही किया।

राजेन्द्र बाबू सबेरे दफ्तर में आते ही विदेशी अतिथियों से मुलाकात करते थे। उस दिन भी वे सबसे मुलाकात करते रहे, लेकिन बीच-बीच में न जाने क्यों, उनका हृदय कचोटता रहा। उन्हें ऐसा लगता रहा कि तुलसी के प्रति उन्होंने उचित व्यवहार नहीं किया।

ज्योंही अतिथियों की मुलाकात खत्म हुई, राजेन्द्र बाबू ने तुरन्त अपने सचिव को बुलाया, कहा—*तुलसी को बुलाओ*।

तुलसी बुलाया गया। वह बेचारा घबड़ाया-सा राजेन्द्र बाबू के सामने खड़ा हो गया। राजेन्द्र बाबू ने अपराधी भाव से तुलसी के सामने हाथ जोड़ दिए। बड़े दीन भाव में बोले—*तुलसी, तुम मुझे माफ कर दो।*

तुलसी की तो जैसे घिग्घी बंध गई। वह कुछ बोल ही न सका। राजेन्द्र बाबू बार-बार कहते रहे—*तुलसी, तुम मुझे माफ कर दो।*

अजीब दृश्य था। एक ओर हाथ जोड़े राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू दूसरी ओर उसी तरह हाथ जोड़े खड़ा उनका सेवक तुलसी। राजेन्द्र बाबू फिर भी बार-बार यही कहते रहे—*तुलसी, तुम मुझे माफ कर दो।*

तुलसी कहे, तो क्या कहे। वह सोच रहा था—बाबू को आज क्या हो गया? वह हतप्रभ था। आखिर जब तुलसी ने साहस बटोरकर कुछ सान्त्वना के शब्द कहे, तो राजेन्द्र बाबू को शान्ति मिली। उन्होंने तुरन्त उसे फिर उसी जगह बुला लिया। जब वह पहले की तरह काम करने लगा, तब राजेन्द्र बाबू को संतोष हुआ।

राजेन्द्र बाबू अपने साथियों और सेवकों को कभी नहीं भूलते थे। वे छोटे से छोटे उस आदमी को याद रखते थे, जो कभी उनके साथ रहा हो। इस सम्बन्ध में एक बड़ा ही मजेदार प्रसंग है। राजेन्द्र बाबू पिलानी जाया करते थे। पिलानी में एक संकरिया कुम्हार था, जिसके काम से वे बहुत प्रसन्न थे। जब वे राष्ट्रपति बने, तो संकरिया को भी राष्ट्रपति भवन में अपने पास बुला लिया। संकरिया राजेन्द्र बाबू की सेवा करता रहा। कुछ दिनों बाद राजेन्द्र बाबू की आज्ञा लेकर वह फिर पिलानी लौट आया और पहले की तरह अपनी जीविका में जुट गया।

एक बार राष्ट्रपति जी पिलानी पधारे। उन्होंने अपने सेवकों से कहा— *जाओ देखो, संकरिया कैसा है। वह क्या करता है। उससे कहना कि मैं उससे मिलना चाहता हूं।*

राष्ट्रपति जी के सेवक गए और लौट कर बताया कि संकरिया अपने काम में लगा है। उसके पास कुछ गधे हैं। उन्हीं पर वह मिट्टी ढोता रहता है और उन्हीं गधों की देख रेख में लगा रहता है। *यह सुनकर राष्ट्रपति जी बहुत हंसे।* जब संकरिया उनसे मिलने आया, तो उन्होंने हंसते हुए कहा—*अरे संकरिया, तूने तो मेरी गधों के बराबर भी कदर नहीं की।*

इस प्रकार राजेन्द्र बाबू के सरल हृदय में महानता का जो सागर भरा रहता था, वह कभी-कभी उनके विनोदी वाक्यों में झलक भी पड़ता था।

उनके विनोद में वाक्य-चातुर्य तो रहता ही था, साथ-साथ उसके भीतर अर्थ भी पैठा होता था। कभी उनके साथ कोई अहित भी होता तो लड़ाई-झगड़ा करने का उनका स्वभाव नहीं था। वह हंसी-मजाक से ही समस्या को हल कर लेते थे। बात उन दिनों की है, जब वे राष्ट्रपति नहीं हुए थे। वे पटना से अपने गांव जीरादेई जा रहे थे। स्टीमर से गंगा पार करनी थी। जिस कैबिन में वे बैठे थे, उस कैबिन में एक सज्जन सिगरेट पीकर राजेन्द्र बाबू की ओर धुआं उड़ा रहे थे। उस धुएं से राजेन्द्र बाबू को खांसी आने लगी। पहले तो राजेन्द्र बाबू सहते रहे, फिर भी जब उस आदमी ने सिगरेट नहीं फेंकी, तो उन्होंने ठेठ देहाती की तरह भोजपुरी में पूछा—*ई सिगरेटवा अपने नू ह ?*(यह सिगरेट आप की ही है न?)

सिगरेट पीने वाले सज्जन ने सिगरेट का एक और कश खींचते हुए बड़े अभिमान के साथ कहा—*हां, मेरी नहीं तो क्या आपकी है।*

इस पर राजेन्द्र बाबू ने कोई क्रोध नहीं दिखाया। बड़े साधारण ढंग से बोले—*सिगरेटवा अपने ह त ओकर धुअंवो अपने ही होई। फिन एकरा के भी पास संजो के रखल जाव। दोसरा पर एका काहे का फेंकत बानी?* (जब सिगरेट आपकी है तो इसका धुआं भी आप ही का है। इसे भी अपने पास संभाल कर

रखिए, दूसरे पर क्यों फेंक रहे हैं?)

सिगरेट पीने वाले सज्जन पर घड़ों पानी पड़ गया, उन्होंने सिगरेट फेंक दी।

आडम्बरहीनता

राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति के रूप में जब पहली बार राष्ट्रपति भवन गए, तो उन्हें उस कक्ष में ले जाया गया, जहां उन्हें निवास करना था। राजेन्द्र बाबू अपने उपयोग की वस्तुओं को देखने लगे। इनमें एक पलंग भी था। इस पलंग पर ब्रिटिश भारत में वायसराय सोया करते थे। राजेन्द्र बाबू पलंग के निकट पहुंचे। उन्होंने अपने दाहिने हाथ से पलंग को दबाया। पलंग स्प्रिंगदार था, इसलिए उनका हाथ नीचे तक चला गया। राजेन्द्र बाबू आश्चर्य से बोले—*यह पलंग मेरे लिए? नहीं। इस पर सोने वाले की तो वही हालत होगी, जो घी भरे कनस्तर में कटोरी छोड़ देने पर कटोरी की होती है। इस पर जो सोएगा, वह कटोरी की तरह नीचे चला जाएगा।*

राजेन्द्र बाबू ने अपने लिए लकड़ी के तख्त की व्यवस्था करवाई। उसी पर वे अपने पूरे राष्ट्रपतित्व काल में सोते रहे।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उनके सरल, ईमानदार, आडम्बरहीन और क्षमाशील व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है—

> डॉ० राजेन्द्र प्रसाद बहुत अच्छे साथी हैं। उनके साथ रहकर आप सदैव ईमानदारी से भरी सहायता और सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। उनके मुख पर कुछ ऐसी आध्यामिक कांति है, जो प्रेरणा और सहायता प्रदान करती है। वे कभी भी पदों के इच्छुक नहीं रहे, परन्तु ऊंचे पद उनके चरणों पर गिरते हैं। वे कर्त्तव्य समझकर उनको सम्भालते हैं। वे अत्यन्त उदार हृदय और क्षमाशील हैं। विश्वास की ज्योति सदैव उनके हृदय में जलती रहती है। उन्होंने अपने गुरु महात्मा गांधी का पूर्ण रूप से अनुसरण किया है, और जब कभी उनसे

मतभेद भी हुआ, तब राजेन्द्र बाबू ने उनकी बात को ही स्वीकार किया, क्योंकि राजेन्द्र बाबू को विश्वास था कि बापू को गलती न करने की आदत है।

पंडित जवाहर लाल नेहरू अक्सर कहा करते थे — *राजेन्द्र बाबू का अपनी जबान, दिल और कलम तीनों पर काबू है, जबकि मेरा इन तीनों में से किसी पर भी नहीं।*

क्रोध भी हो तो ऐसा

सरदार बल्लभ भाई पटेल का मत था कि राजेन्द्र बाबू अजातशत्रु हैं, जिसका कोई शत्रु पैदा ही नहीं हुआ। बात भी ठीक है। राजेन्द्र बाबू में क्रोध नहीं था, लोभ नहीं था, अभिमान नहीं था, तब फिर शत्रु कोई क्यों बनता। पर यह कैसा अनोखा संयोग है कि राजेन्द्र बाबू को क्रोध आया, और वह तब आया, जब वह सरदार पटेल के साथ बारडोली में थे।

राजेन्द्र बाबू की सेवा-सुश्रूषा भाई शंकर पांड्या किया करते थे। एक बार किसी त्यौहार में खीर-पूरी का भोजन बना। राजेन्द्र बाबू भोजन करके बाहर बरामदे में टहल रहे थे। सहसा उनकी निगाह बरतन मांजने वाले कहार पर पड़ी। वह पत्तल में पहले दिन का बचा बासी चावल खा रहा था। राजेन्द्र बाबू थोड़ी देर तो उसे एकटक देखते रहे, फिर गरजकर ऊंची आवाज़ में शंकर पांड्या को बुलाया। शंकर पांड्या राजेन्द्र बाबू का यह रूप देखकर घबड़ा गए। उन्होंने पहले कभी राजेन्द्र बाबू को इस प्रकार क्रोध में नहीं देखा था। राजेन्द्र बाबू ने शंकर पांड्या से गुस्से में पूछा—*किसने परोसे इसे रात के बासी चावल? जाओ, खीर-पूरी की पत्तल लाओ*।

राजेन्द्र बाबू ने कहार के सामने से पत्तल उठाई और उसे कुत्तों के आगे फेंक दिया। जब तक खीर-पूरी की पत्तल नहीं आ गई, राजेन्द्र बाबू की त्योरी चढ़ी रही।

सरदार की भविष्यवाणी

शाम को यह बात जब शंकर पांड्या ने सरदार पटेल को बताई, तो वह मुस्करा दिए और बोले—जरा इस पर नजर रखो, बापू स्वराज्य लेकर इसी को देंगे।

कितनी सत्य भविष्यवाणी थी, सरदार पटेल की। सरदार पटेल ही नहीं, दूसरे नेता भी जानते-मानते थे कि राजेन्द्र बाबू गांधी जी को बहुत प्रिय हैं। सरदार पटेल के व्यंग में यही अर्थ छिपा था—जो गांधी जी को प्रिय है, वह हमारा भी प्रिय है। वैसे सरदार पटेल भी जानते थे राजेन्द्र बाबू को न कभी गुस्सा आता है, न कभी कोई बात उन्हें असंतुलित करती है। बारडोली सत्याग्रह के दिनों में सरदार ने राजेन्द्र बाबू के विषय में कई बार इस तरह के व्यंग किए, लेकिन सबसे पीछे राजेन्द्र बाबू के गुणों की गंध ही है। एक दिन सरदार पटेल ने राजेन्द्र बाबू के सम्बन्ध में कुंवर भाई से कहा—*जानते हो यह बुद्ध जैसा आदमी यहां क्यों है? यह बापू का खुफिया है। हम सब पर नज़र रखने के लिए उन्होंने इसे यहां तैनात किया है।*

कुंवर भाई बारडोली संग्राम में सरदार पटेल के लेफ्टीनेन्ट थे। उन्होंने कहा—*भाई जी, यह सीधी-सादी ग़ाय भला क्या जासूसी करेगी?*

सरदार ने मुस्कराते हुए कहा—*गाय नहीं, बापू की कामधेनु है यह। दूध पिलाकर हम सब को अहिंसक बना देगी।*

इसी प्रकार का एक और रोचक प्रसंग है। राजेन्द्र बाबू दमे से पीड़ित थे। कभी-कभी तो रात भर खांसते रहते थे। सरदार बहुत चिंतित हो जाते थे। एक दिन कुंवर भाई से सरदार ने

कहा—*बापू का पत्र आया है। राजेन्द्र बाबू खांसते हैं यहां, और नींद हराम होती है बापू की, वहां। किसी वैद्य को बुलाओ।*

वैद्य का उपचार तो हुआ, लेकिन खांसी और बढ़ गई। सरदार ने कुंवर भाई से कहा—*बापू को लिख दो कि राजेन्द्र बाबू की खांसी का इलाज वैद्यों के पास नहीं है, आप के ही पास है। स्वराज्य मिलते ही इनकी खांसी मिट जाएगी।*

सरदार द्वारा व्यंग में कहीं गई, यह बात भी तो सच ही निकली। स्वराज्य मिलने पर राजेन्द्र बाबू की खांसी ही क्या, देश के सारे रोग मिटने के दिन आये। इन दिनों के बनाने-संवारने का सिरमौर उत्तरदायित्व भी राजेन्द्र बाबू को ही सौंपा गया।

महाराष्ट्र के तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने सन् 1955 में राजेन्द्र बाबू के जन्मदिन पर कहा था

> आज मैं सच्चे मन से कामना करता हूं कि आने वाले बहुत-बहुत वर्षों तक वे हमारे बीच बने रहेंगे, अपने उपदेशों और उदाहरण के द्वारा हमें सच्चाई के कठिन मार्ग पर कायम रख सकेंगे। मैं सचमुच उन्हें गांधी जी की भावनाओं का मूर्त रूप मानता हूं। आज मैं उनके व्यक्तिगत जीवन की सादगी के गुणों का, स्वभाव की भद्रता का, सब के लिए सहायता भाव का, जीवन के सभी क्षेत्रों के लोगों के साथ सहानुभूति और समझदारी का, गांधी के प्रति निष्ठा का·····स्मरण करता हूं। आज मैं अपने देशवासियों से यह भी चाहूंगा कि वे केवल अभिनन्दन और शुभकामनाएं प्रकट करके ही संतुष्ट न हो जायें, बल्कि जैसी जिन्दगी वे जीते हैं, उसी तरह जीने की कोशिश करें·····।

राष्ट्रपति पद से मुक्ति

राजेन्द्र बाबू ने 26 जनवरी, 1950 ई० को राष्ट्रपति का पद ग्रहण किया था। उन्होंने 12 वर्ष तीन महीने 17 दिन इस पद की गरिमा को निभाया, उसके सम्मान को ऊंचाइयों तक पहुंचाया। 13 मई, 1962 को उन्होंने राष्ट्रपति के पद से मुक्ति ले ली और पटना के सदाकत आश्रम में जाने का निश्चय किया।

इसी दिन शासकीय रूप से डॉ० राधाकृष्णन ने राष्ट्रपति का पदभार सम्भाला। संसद भवन में एक भव्य समारोह किया गया। इस समारोह में राजेन्द्र प्रसाद को *भारतरत्न* की उपाधि से विभूषित किया गया।

उस दिन वह दृश्य बड़ा ही मार्मिक था। राजेन्द्र बाबू एक विशेष ट्रेन से पटना को प्रस्थान कर रहे थे। ट्रेन नई दिल्ली स्टेशन पर लगी थी। राजेन्द्र बाबू छै घोड़ों की बग्घी पर डॉ० राधाकृष्णन के साथ स्टेशन पहुंचे। राष्ट्रपति भवन से नई दिल्ली स्टेशन तक अपार जनसमूह राजेन्द्र बाबू को विदाई देने के लिये इकट्ठा हो गया। राजेन्द्र बाबू विनम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़े सबका अभिवादन स्वीकार करते हुए स्टेशन तक आये। राजेन्द्र बाबू जब ट्रेन पर अपने डिब्बे में बैठ गये, तब भी लोग बारी-बारी से जाते रहे और उन्हें विदाई देते रहे। मंत्रिमंडल और देश के गणमान्य नागरिक सभी तो वहां थे। पंडित जवाहर लाल नेहरू वहां पहले ही पहुंच गये थे, पर वे न जाने क्यों उदास-उदास इधर-उधर घूमते रहे। ट्रेन छूटने से थोड़ा पहले वह डिब्बे में घुसे और राजेन्द्र बाबू के गले में हाथ डाल कर लिपट गये, फिर फूट-फूट कर रो पड़े।

वहां भी देश और जन सेवा

राष्ट्रपति पद से अवकाश लेते समय राजेन्द्र बाबू ने कहा था—*इस समय मुझे वैसी ही खुशी हो रही है, जैसी खुशी विद्यार्थी को स्कूल से छुट्टी के बाद घर जाते समय होती है*। इस कथन को पढ़कर कोई सोच भले ही ले कि राजेन्द्र बाबू पटना को अपना घर मान रहे थे, पर सच तो यह है कि उनके लिए पूरा देश एक घर था। सदाकत आश्रम जाकर वह कभी अपने और अपने परिवार के सुख के लिए चिन्तित नहीं हुए। वहां भी देश और समाज सेवा में ही संलग्न रहे।

उस समय उनकी अवस्था उन्नासी वर्ष से कुछ अधिक ही थी। पर इस अवस्था में भी जितनी शक्ति उनमें बची थी, वे देश को ही अर्पित कर रहे थे। इसी बीच 9 सितम्बर, 1962 को उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजवंशी देवी का देहांत हो गया। फिर भी एक कर्मयोगी की तरह वे जनसेवा में जुटे रहे। सन् 1962 के अक्टूबर महीने में चीन ने भारत पर आक्रमण किया। राजेन्द्र बाबू ने पटना में एक सभा बुलाई। उनके आह्वान पर अपार जनसमूह उमड़ पड़ा। कहते हैं, आज़ादी के बाद पटना के गांधी मैदान में यह सबसे बड़ी सभा थी। सभी जानते थे कि राजेन्द्र बाबू जीवन भर अहिंसावादी रहे। उन्होंने कभी युद्ध, संघर्ष की बात नहीं की। लेकिन जब आज़ादी के 15 साल के लहलहाते बिरवे पर चीन ने कुल्हाड़ी मारी तो वे अपने को नहीं रोक पाये। उन्होंने कहा—

हमने अहिंसा द्वारा एक ऐसी ताकत से आज़ादी ली, जो

दुनिया की सबसे बड़ी ताकतों में गिनी जाती थी। आज दूसरा समय आया है और अहिंसा से महात्मा गांधी ने जो आज़ादी प्राप्त की, उसे आवश्यकतानुसार हिंसा और अहिंसा दोनों तरीकों से बचाना है। जो हिंसा के रास्ते पर चल कर देश को बचाना चाहते हैं, वे उस रास्ते से आगे बढ़ें। पर आज यह सोचने का समय नहीं है कि कौन रास्ता अच्छा है और कौन बुरा। मूल बात यह है कि हमें हर स्थिति में भारत को स्वतंत्र रखना है।

राजेन्द्र बाबू के मानस में आज नई तरह कीं लहरें उठी थीं। उनमें शीतलता नहीं थी, एक प्रकार की चिनगारी थी। उस चिनगारी की आंच उनकी वाणी में भी आ गई थी। उन्होंने आगे कहा—

संसार इस बात का साक्षी है कि भारतीय गणराज्य ने किसी भी देश की ओर बुरी नजर से नहीं देखा। पर लड़ाई के समय हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि हम आवश्यकतानुसार कहीं भी जाकर शत्रु का मुकाबला करें। चीन जहां से चोरों की तरह हमारी भूमि में घुसा, वहीं से उसके पांव उलट देने चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजेन्द्र बाबू सदाकत आश्रम आकर ज्यादा सक्रिय हो गये। इस समय वे परिस्थिति के अनुसार नई पीढ़ी को नई तरह की प्रेरणा दे रहे थे। वह सारी प्रेरणा देश सेवा और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए थी।

शरीर तो अब शिथिल हो ही चुका था। सदाकत आश्रम में जब कभी वह अधिक कष्ट में होते और डॉक्टर उन्हें देखने आता, तो वह उससे कहते

डाक्टर साहब, शरीर के सभै कल-पुर्जा खिया गइल बा, धीरे-धीरे आपन काम करल बन्द करी। केतना के ठीक करब, जायं दी। ऐसन शरीर से जब कोनो काम न ले के

ठहरल, तब एकरा जाहीं के चाहीं। (डाक्टर साहब, शरीर के सारे कल-पुर्जे घिस गए हैं। धीरे-धीरे सभी अपना काम करना बन्द कर देंगे, किस-किस को ठीक करोगे। जाने दो। इस शरीर से जब कोई काम नहीं ले सकते, तब इसको जाना ही चाहिए।)

अंतिम विदा

शरीर की ऐसी अवस्था में भी वह सार्वजनिक कामों को महत्त्व देते रहे। राष्ट्रपति भवन छोड़ कर सदाकत आश्रम आए हुए अभी उन्हें केवल 9 महीने 16 दिन हुए थे। वह 28 फरवरी, 1963 का दिन था। उस दिन पटना विश्वविद्यालय में राजेन्द्र बाबू को दीक्षांत भाषण देना था। वह भाषण लिख चुके थे, भाषण छप भी गया था। लेकिन उसी दिन अचानक शाम को उन्हें बुखार आ गया। और इस बुखार में जो शरीर गिरा, वह कभी उठ न पाया। पटना विश्वविद्यालय में उनका लिखित भाषण बिहार विधान सभा के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ० लक्ष्मीनारायण *'सुधांशु'* ने पढ़ा।

मृत्यु के समय राजेन्द्र बाबू के छोटे लड़के धन्नू बाबू, उनकी पत्नी कमलाजी, भतीजे जनार्दन बाबू की पत्नी चन्द्रमुखी देवी और इनके सभी बच्चे उनके आस-पास थे। पांच-सात कर्मचारी भी खड़े थे। बिहार के प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० विष्णुकान्त झा आ गए थे। वह खाट के पास मंत्रोच्चार करके गंगाजल छिड़क रहे थे। डॉ. टी.एन. बनर्जी, डॉ. रघुनाथ शरण और डॉ. रत्नेश्वरी प्रसाद सिनहा तीनों सलाह-मशविरा कर रहे थे। नब्ज की गति धीरे-धीरे घट रही थी। रात के दस बजे थे। राजेन्द्र बाबू के गले में घड़घड़ाहट हुई। वे एक बार बोले—*राम हो!* दो-तीन हिचकियां आईं और फिर शान्त हो गए। सभी लोग रो पड़े। उनके शरीर को खाट से उठाकर जमीन पर लिटा दिया गया। रात ही रात देश-विदेश में खबर फैल गई। उनके दर्शन के लिए लोगों का आना शुरू हुआ। दूसरे दिन दोपहर को पटना के बांस घाट पर राजकीय सम्मान के साथ उनका अन्तिम संस्कार कर

दिया गया। उनका शरीर चिता में भस्म हो गया, सदा के लिए, लेकिन उनके विचार और कर्म जीवित हैं, आगे भी जीवित रहेंगे और उन्हीं से नित्य-नए अंकुर फूटेंगे।
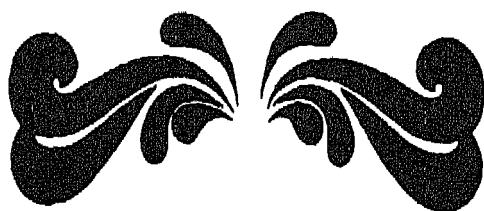
जीवन की स्मरणीय तिथियां

3 दिसम्बर	1884	जन्म
जून	1896	विवाह
मार्च	1902	कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक हुए
मार्च	1906	कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक हुए
दिसम्बर	1907	कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम०ए० हुए
जुलाई	1908	भूमिहार ब्राह्मण कॉलेज मुजफ्फरपुर में प्राध्यापक नियुक्त हुए
मार्च	1909	कानून के अध्ययन के लिए फिर कलकत्ता गए
	1910	कानून में डिग्री प्राप्त की
	1911	कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत शुरू की
	1914-15	कलकत्ता कॉलेज में प्रोफेसर बने
	1916	पटना हाई कोर्ट स्थापित होने पर वहां वकालत शुरू की
	1917-18	महात्मा गांधी के साथ चम्पारन गए
	1918	अंग्रेजी दैनिक *सर्च लाइट* का प्रकाशन प्रारम्भ किया
	1920	हिन्दी साप्ताहिक *देश* का प्रकाशन प्रारम्भ किया

	1921	असहयोग आन्दोलन में शामिल हुए और वकालत छोड़ दी
	1921	बिहार विद्यापीठ स्थापित किया
	1923-27	बिहार विद्यापीठ के कुलपति रहे
17 जनवरी	1934	जेल से रिहा हुए और बिहार के भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए संगठन बनाया
3 अक्टूबर	1934	बम्बई में कांग्रेस के अखिल भारतीय अधिवेशन के अध्यक्ष बने
	1935	क्वेटा भूकम्प सहायता सोसाइटी के अध्यक्ष बने
15 दिसम्बर	1937	इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डॉक्टर ऑफ लॉ की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया
	1939	सुभाषचन्द्र बोस के त्यागपत्र के बाद कांग्रेस अध्यक्ष बने
2 दिसम्बर	1946	अन्तरिम सरकार में खाद्य एवं कृषि मंत्री बने
	1946-49	भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष रहे
17 नवम्बर	1947	आचार्य कृपलानी के त्यागपत्र देने पर कांग्रेस अध्यक्ष का कार्य-भार सम्भाला
	1948	गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष बने
26 जनवरी	1950 से 13 मई, 1962	भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति रहे

13 मई	1962	*भारतरत्न* की उपाधि से विभूषित और दिल्ली से पटना को प्रस्थान
14 मई	1962	सदाकत आश्रम, पटना में आगमन व प्रवास
9 सितम्बर	1962	धर्मपत्नी श्रीमती राजवंशी देवी का देहान्त
28 फरवरी	1963	सदाकत आश्रम पटना में स्वर्गवास

of questionnaires, visits and meetings with the representatives of these countries. The survey revealed a need for this kind of programme in these countries Other steps taken with regard to the planning of the programme are as shown below·

* A high level advisory committee was set up which gave the initial guidelines, reviewed and approved the eligibility criteria and procedure for admission, fee and course rules etc

* A Board of studies was set up to advise the course faculty with regard to formulation of various aspects of the course. The course content and evaluation procedure and rules were discussed and approved in the two meetings of Advisory Committee and Board of Studies held for this purpose

- An information brochure for offering the course in the year 2001-2002 was prepared which was sent to various countries in Asia and Africa through their embassies in India and through Indian high commissions abroad. A fresh brochure for 2002-2003 containing information about the course and application form are being prepared.
  - The information bulletin containing the course syllabi and other procedural details, course rules, etc is also under preparation Correspondence with the governments of the countries which are likely to send the applicants has also started

  - In addition to approaching the embassies, applications would be invited from individuals and institutions outside with whom direct links have been established by I R Unit,NCERT.

A meeting of the Board of Studies of the course will be held to discuss all matters pertaining to organization of the course in Sept 2002

(c) Proposed Supporting Staff/(JPF/CA), if any

Designation	Total No of months
JPF (s)	One for six months
CA (s)	N.A

9

Collaborating Agencies (if any	Name of Agency	Nature of Collaboration
(a) NCERT Constituents	-	-
(b) Outside Agency	To be identified later These could be UNERSCO, SAARC, Govts. Of various countries etc	-

10 Phasing of the Programme with precise information on Activities (including in-house-activities involving expenditure or otherwise clearly indicating the methodology to be followed)

S.No	Activities proposed to be organised	Proposed dates From To	Estimated Expenditure (if any)
1	Preparation of a brochure and application form for 2002-2003 course.	December,2001	
2.	Visits/correspondence with International agencies, UNESCO offices for publicity, funding etc	January,02 – March,02	
3	Correspondence with foreign embassies in India and with Indian High Commissions abroad for course announcement and for mailing of information brochures and application forms etc		
4	Finalisation of course content and preparation and printing of information bulletin of the course	Feburary,02-March,02	10,000/-
5	Correspondence with prospective candidates and nominating national govts, and concerned Ministries of various countries.	March,02 to June 2002	
6	Meeting of the Board of studies	July ,2002	25,000/-
7.	Preparation and purchase of course material and resource material including books/Guidance counselling literature and other preparations for starting the programme in September, 2002	July,02 – August,02	20,000/-
8.	JPF for six months for assistance in making visits to embassies/international agencies, correspondence work, preparation of bulletin, development of course material and other organizational work		26,400/-

9	Contingencies		10,000/-
		Total estimated exp.	91,400 or 92,000/-

* This is a tentative budget required for preparation of the programme More funds will be required once the programme takes off

11. Details of each Budget Activity under Item No.10 (in the following format)

11.1 Activity No : 4

Title Preparation of Information Bulletin

Dates March – June, 2002

S.No	Item of Expenditure	Estimated Expenditure	Remarks, if any
1	Printing of Information Bulletin	10,000/-	

11.6 Activity No. : 6

Title . Meeting of the Board of Studies

Dates · July 2002 (2 days)

S No.	Item of Expenditure	Estimated expenditire	Remarks,if any
1	TA/DA for outside members (One Air fare)	14,000/-	
2.	2 Train fares (2x2500)	5,000/-	
3.	DA & Honorarium and local conveyance	5,000/-	
4	Contingency	1,000/-	
	Total	25,000/-	

11.7 Activity No . 7, 8 & 9

Title · Preparations for Starting the Programme

Dates July – Aug, 2002

S No	Item of Expenditure	Estimated expenditure	Remarks, if any
1	Purchase of course material books/literature	20,000/-	

2	JPF for 6 months @Rs 4,400/- x6	26,400/-		
3.	Contingencies	10,000/-		
	Total	56,400/-		

12. Expected end-product

Professional counselors for developing countries where such facilities are scarce would be trained. Interaction and exposition through the course curricula will achieve the cherished goal of International cooperation and understanding through awareness and appreciation of multicultural and diversity issues across countries

13 (a).Plans for utilization and dissemination of the end product(s)

The trained personnel will man the guidance positions in the schools, university departments of education and psychology, teacher training colleges and other related settings in their own countries to provide need based guidance and counseling services to children and youth The trained personnel acting as resource persons will help in improving the quality of education in their respective countries

(b) Plans for Evaluation of the Outcome

The course content will be got evaluated through a feedback received from the participants at the end of the programme and later when they are placed at work
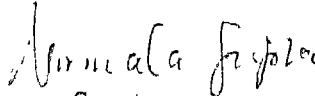
(c) Plans for follow up/feedback on utilization of the outcome
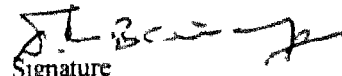
Evaluation of the impact of the programme will be done through the follow up of the trained personnel.

14. Personnel Involved

14 1 Name and Designation of the Programme Coordinators
Dr. (Mrs) Nirmala Gupta

14 2 Names and Designation of other faculty member(s) involved
Teaching faculty – Prof Swadesh Mohan, Prof Sushma Gulati, Dr Daya Pant, Dr G K Joneja, Dr R.K Saraswat, Dr. Anjum Sibia, Dr.Gauri Thakar.

Nirmala Gupta
Signature
(Programme Coordinator)

Signature
Head of the Deptt./Institute)

(c) Summary Statement of the Programme Proposals for the year 2002-2003

Name of the NCERT Constituent-------- DEPFE

S N o	Title	Type	Coordinator	Category	Estimated Budget for 2002-2003	Recommendations of DAB
1	2	3	4	5	6	7
1	National Seminar cum Workshop on Planning Strategies for Strengthening Values Education	Extension	Prof S Mohan, Dr D Pant,	New	12,00,000 -	Recommended with suggestions for implementation
2.	Development of Decentralized Regional Nodal Centers for Implementing and Monitoring National Programme on Values Education at State, District and Grass-root Levels	Extension	Prof D K Bhattacharjee Prof S.Gulati Prof S Mohan Prof N Gupta Dr D Pant	New	40,10,000 -	Recommended with suggestions for implementation
3	Development of an Awareness Generation Package for Strengthening Values in Education	Develop-ment	Prof S Gulati, Prof N Gupta	New	1,85 500 -	Recommended with the suggestion to include pre primary stage of education
4	Formulation of Prototype Programmes and Guidelines for Development of values	Develop-ment and Extension	Dr G K Joneja Dr R.K Saraswat	New	1,69,000/-	Recommended With modified title and revised activities/budget activities under Item No 10
5	Development of Prototype Training Design and Materials for Training of Teacher Educators and Teachers in Value Education. (Transferred to the Department of Teacher Education & Extension (DTEE) and also approved by the DAB of DTEE held on 10 12 2001	Develop-ment	Prof S Nagpal (DTEE) Dr K Bhutani (Associated Faculty, DEPFE)	New	4,16,200/-	Recommended with modified title
6	Sponsoring Research and Innovations in Values Education	Research and Development	Dr A Sibia, Prof. D.K Bhattacharjee	New	10,60,000/ -	Recommended with modified title and suggestions incorporated in methodology

7	Development of Minimum Standards for Education in Human Values	Develop-ment	Prof S Mohan Prof D K. Bhattacharjee,	New	4,00 000/-	Recommended with modified title and suggestions incorporated in methodology
8	Developing and Implementing Strategies for Coordination and Monitoring the Activities of the Regional Resource Centres for Training Teachers and Material Development in Values Education	Extension	Dr D Pant Prof D K. Bhattacharjee	New	1,21,200/-	Recommended with modified title
9	Development of Data Base in Value Education	Developm ent	Dr K Bhutani Dr. R K.Sharma	New	30,000/-	Recommended with modified title, JPF as supporting staff instead of CA and suggestions incorporated in methodology
10	Preparation of Psychology Textbook for Classes XII	Develop-ment	Dr A Sibia,	New	1,80,000/-	Recommended with suggestions incorporated in methodology
11	Development of Framework for Foundations Courses for Pre-Service Teacher Training Programmes at Secondary Level	Research and Developm ent	Dr D Pant Prof D.K. Bhattacharjee	New	60,800/-	Recommended with modified title and suggestions incorporated in methodology
12	Development of Reference Library of the National Resource Centre for Value Education	Develop-ment	Dr R K Sharma	On-going	3,54,200/-	Recommended with suggestions incorporated for development of a corner of audio video resources and prevision of photocopy facilities
13	Journal of Value Education	Develop-ment	Prof D K Bhattacharjee Prof N Gupta	On-going	25,000/-	Recommended with provision made in budget for payment of honorarium to authors
14	Development of National Library of Educational and Psychological Tests (NLEPT)	Develop-ment	Dr. R.K Saraswat	On-going	55,000/-	Recommended with suggestion to publicise the Library

15	Development of Guidance and Counselling Laboratory	Development	Dr R K Saraswat,	On-going	50,000 -	Recommended with modified title and revised budget
16	International Diploma Course in Guidance & Counselling 2002-2003	Training	Prof N Gupta	On-going	92,000 -	Recommended with suggestions related to inviting applications from outside countries and possibility of online course

15	Development of Guidance and Counselling Laboratory	Develop-ment	Dr R K. Saraswat	On-going	50,000 -	Recommended with modified title and revised budget
16	International Diploma Course in Guidance & Counselling 2002-2003	Training	Prof N Gupta	On-going	92,000 -	Recommended with suggestions related to inviting applications from outside countries and possibility of online course